सत्यमेव जयते

भारत सरकार

विधि आयोग/Law Commission of India ★ पुस्तकालय/LIBRARY

भारत

का

विधि

आयोग

एल. चंद्र कुमार वाले मामले पर उच्चतम न्यायालय की वृहत्तर न्यायपीठ द्वारा पुनर्विचार किया जाए ।

रिपोर्ट सं. 215

नवम्बर, 2008

भारत का विधि आयोग

(रिपोर्ट सं. 215)

एल. चन्द्र कुमार वाले मामले पर उच्चतम न्यायालय की वृहत्तर न्यायपीठ द्वारा पुनर्विचार किया जाए ।

डा. न्यायमूर्ति एआर. लक्ष्मणन, अध्यक्ष, भारत का विधि आयोग द्वारा 17 दिसम्बर, 2008 को डा. एच. आर. भारद्वाज, केन्द्रीय विधि और न्याय मंत्री, विधि और न्याय मंत्रालय, भारत सरकार को अग्रेषित ।

18वें विधि आयोग का गठन भारत सरकार, विधि और न्याय मंत्रालय, विधि कार्य विभाग, नई दिल्ली के आदेश संख्या ए.45012/1/2006-प्रशा. III (एल ए) तारीख 16 अक्तूबर, 2006 द्वारा 1 सितम्बर, 2006 से तीन वर्ष के लिए किया गया ।

विधि आयोग अध्यक्ष, सदस्य-सचिव, एक पूर्णकालिक सदस्य और सात अंशकालिक सदस्यों से मिलकर बना है ।

अध्यक्ष

माननीय न्यायमूर्ति डा. एआर. लक्ष्मणन, अध्यक्ष

सदस्य-सचिव

डा. ब्रह्म ए. अग्रवाल

पूर्णकालिक सदस्य

प्रोफेसर (डा.) ताहिर महमूद

अंशकालिक सदस्य

डा. (श्रीमती) देविन्दर कुमारी रहेजा

डा. के. एन. चन्द्रशेखरन पिल्लै

प्रोफेसर (श्रीमती) लक्ष्मी जामभोलकर

श्रीमती कीर्ति सिंह

न्यायमूर्ति आई. वेंकटनारायण

श्री ओ. पी. शर्मा

डा. (श्रीमती) श्यामला पप्पू

विधि आयोग आई. एल. आई. बिल्डिंग, द्वितीय तल, भगवानदास रोड, नई दिल्ली-110001 पर स्थित है ।

विधि आयोग के कर्मचारिवृंद

सदस्य-सचिव

डा. ब्रह्म ए. अग्रवाल

अनुसंधान कर्मचारिवृंद

श्री सुशील कुमार	:	संयुक्त सचिव और विधि अधिकारी
सुश्री पवन शर्मा	:	अपर विधि अधिकारी
श्री जे. टी. सुलक्षण राव	:	अपर विधि अधिकारी
श्री ए. के. उपाध्याय	:	उप विधि अधिकारी
डा. वी. के. सिंह	:	सहायक विधि सलाहकार

प्रशासनिक कर्मचारिवृंद

श्री सुशील कुमार	:	संयुक्त सचिव और विधि अधिकारी
श्री डी. चौधरी	:	अवर सचिव
श्री एस. के. बसु	:	अनुभाग अधिकारी
श्रीमती रजनी शर्मा	:	सहायक पुस्तकालय और सूचना अधिकारी

इस रिपोर्ट का पाठ **http://www.lawcommissionofindia.nic.in** पर इन्टरनेट पर उपलब्ध है ।

© भारत सरकार

भारत का विधि आयोग

इस दस्तावेज का पाठ (सरकारी चिह्न के सिवाय) इस शर्त के अधीन किसी प्ररूप या माध्यम में निःशुल्क पुनरुत्पादित किया जा सकता है बशर्ते कि यह ठीक-ठीक पुनरुत्पादित किया गया है और भ्रामक संदर्भ में प्रयोग नहीं किया गया है । सामग्री की अभिस्वीकृति भारत सरकार कापीराइट और विनिर्दिष्ट दस्तावेज के शीर्षक के रूप में की जाए ।

इस रिपोर्ट से संबंधित कोई पूछताछ सदस्य-सचिव, भारत का विधि आयोग, द्वितीय तल, आई. एल. आई. भवन, भगवानदास रोड, नई दिल्ली-110001, भारत को डाक द्वारा या ई-मेल : Ici-dla@nic.in द्वारा संबोधित किया जाए ।

डा. न्यायमूर्ति एआर. लक्ष्मणन
(भूतपूर्व न्यायाधीश, भारत का उच्चतम न्यायालय)
अध्यक्ष, भारत का विधि आयोग

आई.एल.आई. भवन
(द्वितीय तल)
भगवान दास रोड,
नई दिल्ली-110001
दूरभाष- 91-11-22384475
फैक्स - 91-11-23383564

अर्ध. शा.सं. 6(3)1141/2008-एल सी(एल एस) 24 नवम्बर, 2008.

प्रिय डा. भारद्वाज जी,

विषयः- **एल. चन्द्र कुमार वाले मामले पर उच्चतम न्यायालय की वृहत्तर न्यायपीठ द्वारा पुनर्विचार किया जाए ।**

मैं उपरोक्त विषय पर भारत के विधि आयोग की 215वीं रिपोर्ट अग्रेषित कर रहा हूं ।

संविधान (बयालीसवें संशोधन) अधिनियम, 1976 की धारा 46 जिसके द्वारा संविधान में "अधिकरण" पर नया भाग 14क अंतःस्थपित किया गया, संविधान विधि में मूलभूत परिवर्तन लाया गया । अनुच्छेद 323क संसद् को विधि द्वारा, संघ या किसी राज्य के क्रियाकलाप से संबंधित लोक सेवाओं या पदों के लिए भर्ती तथा नियुक्त व्यक्तियों की सेवा की शर्तों के संबंध में विवादों और परिवादों के प्रशासनिक अधिकरणों द्वारा न्यायनिर्णयन या विचारण के लिए उपबंध करने हेतु सशक्त करता है । विधि संघ के लिए एक प्रशासनिक अधिकरण और प्रत्येक राज्य या दो या अधिक राज्यों के लिए एक पृथक् प्रशासनिक अधिकरण की स्थापना के लिए उपबंध कर सकेगी । विधि सेवा मामले विषयक विवादों के न्यायनिर्णयन को सिविल न्यायालयों और उच्च न्यायालयों के हाथों से वापस ले सकेगी ।

निवासः सं. 1, जनपथ, नई दिल्ली-110001. टेली. 91-11-23019465, 23793488, 23792745. ई-मेल : ch.lc@sb.nic.in.

अनुच्छेद 323क के उपबंधों के अनुसरण में, संसद् ने संघ के लिए प्रशासनिक अधिकरण अर्थात् केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण और राज्य के लिए पृथक् प्रशासनिक अधिकरण या दो या अधिक राज्यों के लिए संयुक्त प्रशासनिक अधिकरण स्थापित करने के लिए प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम, 1985 (अधिनियम) अधिनियमित किया । प्रशासनिक अधिकरणों की स्थापना करना आवश्यक हो गया चूंकि सेवा विषयक अधिकांश मामले विभिन्न न्यायालयों में लंबित थे । यह प्रत्याशा की गई कि प्रशासनिक अधिकरणों की स्थापना से न केवल न्यायालयों का बोझ कम होगा बल्कि व्यथित लोक सेवकों को शीघ्र अनुतोष भी उपलब्ध होगा ।

एस. पी. सम्पत कुमार [(1985) 4 एस. सी. सी. 458] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने संवैधानिक ठोस सिद्धांतों के अनुसार प्रशासनिक अधिकरणों का कार्यकरण सुनिश्चित करने के लिए कतिपय उपाय करने के निदेश दिए । संशोधनकारी अधिनियम (1986 का अधिनियम 19) द्वारा अधिनियम में परिवर्तन किए गए । अनुच्छेद 32 के अधीन उच्चतम न्यायालय की अधिकारिता को प्रत्यावर्तित किया गया । प्रशासनिक अधिकरणों के स्वरूप और अंतर्वस्तु विषयक कतिपय संशोधनों के अधीन रहते हुए एस. पी. सम्पत कुमार [(1987) 1 एस. सी. 124] वाले मामले में अंततः अधिनियम की संवैधानिक विधिमान्यता को कायम रखा गया । एक अन्य संशोधनकारी अधिनियम (1987 का अधिनियम 51) द्वारा सुझाए गए संशोधनों को अधिनियम में समाविष्ट किया गया ।

इस प्रकार, प्रशासनिक अधिकरण ने उच्च न्यायालयों का प्रभावी और वास्तविक स्थान प्राप्त किया ।

1997 में, एल. चन्द्र कुमार [जे. टी. 1997 (3) एस. सी. 589] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय की सात न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने यह

अभिनिर्धारित किया कि अनुच्छेद 323क का खंड (ध) और अनुच्छेद 323ख का खंड 3(ध), जहां तक वे संविधान के अनुच्छेद 226/227 और 32 के अधीन उच्च न्यायालयों और उच्चतम न्यायालय की अधिकारिता अपवर्जित करने की शक्ति संसद् को प्रदान करते हैं, असंवैधानिक हैं । अधिनियम की धारा 28 और अनुच्छेद 323क और 323ख के अधीन अधिनियमित सभी अन्य विधानों में "अधिकारिता का अपवर्जन" खंड उसी सीमा तक असंवैधानिक होगा । न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि संविधान के अनुच्छेद 226/227 के अधीन उच्च न्यायालयों और अनुच्छेद 32 के अधीन उच्चतम न्यायालय को प्रदत्त अधिकारिता हमारे संविधान के अलंघनीय मूलभूत ढांचे का भाग है । प्रशासनिक अधिकरण के सभी विनिश्चय उस उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ के समक्ष संवीक्षाधीन हैं जिसकी अधिकारिता के भीतर संबद्ध अधिकरण आता है ।

परिणामतः, नैमित्तिक रूप से प्रशासनिक अधिकरणों के आदेशों की अपील उच्च न्यायालयों में की जा रही है, जबकि एल. चन्द्र कुमार वाले मामले के विनिश्चय के पूर्व ऐसी स्थिति नहीं थी ।

18 मार्च, 2006 को, प्रशासनिक अधिकरण संशोधन विधेयक, 2006 (2006 का विधेयक सं. 28) को राज्य सभा में, अन्य बातों के साथ-साथ, केन्द्रीय सरकार को प्रशसनिक अधिकरणों को समाप्त करने की शक्ति प्रदान करने के उपबंध और एल. चन्द्र कुमार वाले मामले के अनुसार उच्च न्यायालय में अपील करने का उपबंध अधिनियम में शामिल कर संशोधित करने के लिए पुरःस्थापित किया गया । उक्त विधेयक पर कार्मिक लोक शिकायत, विधि और न्याय की विभाग-संबद्ध संसदीय स्थायी समिति ने अपनी 17वीं. रिपोर्ट में ऐसा ही विचार व्यक्त नहीं किया और उच्च न्यायालय को अपील करने के संबंध में यह मत व्यक्त किया कि

प्रशासनिक अधिकरणों की मूल अवधारणा को कायम रखा जाए और उच्च न्यायालय को अपील अनावश्यक है और यदि कानूनी अपील का उपबंध किया जाए तो यह केवल उच्चतम न्यायालय में ही की जानी चाहिए ।

उपरोक्त पृष्ठभूमि में, विधि आयोग ने स्वप्रेरणा से विषय पर अध्ययन करने का कार्य अपने हाथ में लिया । सेवा मामलों के संबंध में उच्च न्यायालयों के स्थान पर प्रशासनिक अधिकरण को प्रभावी और वास्तविक घटक के रूप में समझा जाता था । इसके अतिरिक्त, उच्च न्यायालयों की न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति को उच्चतम न्यायालय की तरह अलंघनीय नहीं कहा जा सकता है । प्रशासनिक अधिकरणों की स्थापना का उद्देश्य तब विफल हो जाएगा यदि उनके द्वारा न्यायनिर्णीत सभी मामले संबद्ध उच्च न्यायालयों के समक्ष प्रस्तुत किया जाना अनिवार्य बनाया जाता है । यदि एक अपील होना आवश्यक माना जाए तो आंतः-अधिकरण अपील सर्वोत्तम विकल्प होगा और तब अनुच्छेद 136 के अधीन विशेष इजाजत याचिका के माध्यम से मामला उच्चतम न्यायालय के समक्ष लाया जा सकता है । विधि आयोग का यह मत है कि उच्चतम न्यायालय की वृहत्तर न्यायपीठ द्वारा एल. चन्द्र कुमार वाले मामले पर पुनर्विचार किए जाने की आवश्यकता है और विधि के अनुसार अधिनियम में आवश्यक और समुचित संशोधन किया जाए और तद्नुसार हम सिफारिश करते हैं ।

सादर,

भवदीय,

ह.-

(डा. न्यायमूर्ति एआर. लक्ष्मणन)

डा. एच. आर. भारद्वाज,
केन्द्रीय विधि और न्याय मंत्री,
भारत सरकार, शास्त्री भवन,
शास्त्री भवन
नई दिल्ली-110001

भारत का विधि आयोग

एल. चन्द्र कुमार वाले मामले पर उच्चतम न्यायालय वृहत्तर न्यायपीठ द्वारा पुनर्विचार किया जाए ।

विषय सूची

		पृष्ठ सं.
1.	प्रस्तावना	11
2.	प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम, 1985 की पृष्ठभूमि	21
3.	विधि आयोग की 162वीं रिपोर्ट	31
4.	प्रशासनिक अधिकरिण (संशोधन) अधिनियम, 2006 (2007 का 1) और प्रशासनिक अधिकरण (संशोधन) विधेयक, 2006	37
5.	एस. पी. सम्पत कुमार से एल. चन्द्र कुमार की यात्रा और जटिलताएं	44
6.	सशस्त्र बल अधिकरण अधिनियम, 2007	61
7.	प्रशासनिक अधिकरण – अनिवार्यता	68
8.	निष्कर्ष और सिफारिशें	73

1. प्रस्तावना

1.1 देश के विभिन्न उच्च न्यायालयों और अन्य न्यायालयों में लंबित मामलों के बोझ को कम करने की दृष्टि से संसद् ने प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम, 1985 अधिनियमित किया था जो, जहां तक केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण से संबंधित इसके उपबंधों का संबंध है, 1 जुलाई, 1985 को प्रवृत्त हुआ । केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण 2 अक्तूबर, 1985 को स्थापित किया गया । केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण के न्यायपीठ संपूर्ण देश में 17 स्थानों पर स्थित हैं । राज्य प्रशासनिक अधिकरण भी कतिपय राज्यों में स्थापित किए गए हैं ।

1.2 प्रशासनिक अधिकरणों की स्थापना संघ या किसी राज्य के अथवा सरकार के नियंत्रण के अधीन किसी स्थानीय या अन्य प्राधिकारी के अथवा सरकार के स्वामित्व या नियंत्रण के अधीन किसी निगम अथवा सोसायटी के कार्यकलाप से संबंधित लोक सेवाओं और पदों के लिए भर्ती तथा नियुक्त व्यक्तियों की सेवा की शर्तों से संबंधित विवादों के न्यायनिर्णयन के लिए की गई थी । यह संविधान (बयालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1976 की धारा 46 द्वारा संविधान में अंतःस्थापित अनुच्छेद 323क के उपबंधों के अनुसरण में किया गया । प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम, 1985 के लिए विधेयक पुरःस्थपित करते समय उद्देश्यों और कारणों के कथन में यह उल्लेख किया गया था कि अनन्यतः सेवा विषयक मामलों पर विचार करने के लिए ऐसे प्रशासनिक अधिकरणों के गठन से न केवल विभिन्न न्यायालयों के बोझ को कम करने में काफी मदद मिलेगी बल्कि इसके द्वारा अन्य मामलों को शीघ्रता से निपटान के लिए और समय मिलेगा और साथ

ही प्रशासनिक अधिकरण के अंतर्गत आने वाले व्यक्तियों को अपनी शिकायतों के संबंध में शीघ्र अनुतोष प्राप्त होगा । प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम, 1985 के उपबंध सेना या किसी अर्द्ध-सैनिक बल के सदस्यों, उच्चतम न्यायालय या किसी उच्च न्यायालय या उसके अधीनस्थ न्यायालयों के अधिकारियों या कर्मचारियों और संसद् के दोनों सदनों या किसी राज्य विधान मंडल के सचिवीय स्टाफ में नियुक्त व्यक्तियों को लागू नहीं होते । ऐसा व्यक्ति जो उच्च न्यायालय का न्यायाधीश है या रहा है, इसके अध्यक्ष के रूप में प्रशासनिक अधिकरण का प्रधान होता है ।

1.3 1985 मे केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण के गठन के पश्चात् आरंभ में, प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम, 1985 की धारा 29 के अधीन अधिकरण को उच्च न्यायालयों और अधीनस्थ न्यायालयों से अंतरित होने पर 13,350 मामले जो वहां लंबित थे, प्राप्त हुए । इसके पश्चात्, नवम्बर, 2001 तक, 371448 मामले अधिकरण में संस्थित किए गए थे । इनमें से, 3,33,598 मामलों को पहले ही निपटाया जा चुका है । 30.6.2006 तक अंतरण से प्राप्त और अधिकरण की विभिन्न न्यायपीठों में सीधे संस्थित मामलों की कुल संख्या 4,76,336 हैं जिनमे से अधिकरण ने 4,51,751 मामलों का निपटान कर दिया है और 24,585 मामले लंबित हैं जो 94% निपटान गठित करता है । अधिकरण में मामलों के संस्थित किए जाने की संख्या भारी मात्रा में बढ़ी लेकिन मामलों के निपटान का दर भी मात्रात्मक रूप से बढ़ा और नई दिल्ली स्थित अधिकरण की प्रधान न्यायपीठ मे निपटान का दर 94% है । वर्ष 2000 के दौरान अधिकरण के प्रधान न्यायपीठ के 91% प्रतिशत से अधिक मामले दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा रिट याचिका में कायम रखे गए और इस प्रकार गुणात्मकता की दृष्टि से

भी अधिकरण ने बेहतर कार्य किया ।[1]

1.4 प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम, 1985 के अधिनियमन ने सेवा विषयक मामलों में व्यथित सरकारी सेवकों को न्याय दिलाने के क्षेत्र मे एक नया अध्याय खोला । प्रशासनिक अधिकरण का गठन इस आधार-वाक्य पर आधारित है कि प्रशिक्षित प्रशासक और न्यायिक अनुभव दोनों से मिलकर बनी यह विशेषज्ञ निकाय अपने विशेष ज्ञान के आधार पर शीघ्र और प्रभावपूर्ण न्याय देने में बेहतर सुसज्जित होगा । यह प्रत्याश थी कि न्यायिक सदस्यों और गहरी जानकारी रखने वाले व्यक्तियों के विवेकपूर्ण मिश्रण से इस प्रयोजन को सर्वोत्तम ढंग से पूरा किया जाएगा ।[2]

1.5 प्रशासनिक अधिकरण अपनी अधिकारिता और प्रक्रिया के संबंध में साधारण न्यायालयों से सुभिन्न है । वे अधिनियम के अधीन आने वाले वादकारियों के सेवा विषयक मामलों क संबंध में ही अधिकारिता का प्रयोग करते हैं । वे साधारण न्यायालयों के कई तकनीकियों की जंजीरों से मुक्त भी हैं । अधिनियम की प्रक्रियागत सरलता का मूल्यांकन इस तथ्य से किया जा सकता है कि व्यथित व्यक्ति इसके समक्ष व्यक्तिगत रूप से उपस्थित हो सकता है । सरकार भी अपने विभगीय अधिकारियों या विधि व्यवसायियों के माध्यम से अपना पक्षकथन प्रस्तुत कर सकती है । इसके अतिरिक्त, अधिकरण के समक्ष आवेदन फाइल करने के लिए वादकारी द्वारा मात्र 50/- रुपए फीस संदत्त किया जाना है [केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण (प्रक्रिया) नियम, 1987 का नियम 7] । इस प्रकार, अधिकरण का उद्देश्य

---

[1] Hhp://cgat.gov.in/itro.htm, 8-12-2008 को देखा ।

[2] प्रशासनिक अधिकरण (संशोधन) विधेयक, 2006 पर कार्मिक, लोक शिकायत, विधि और न्याय की विभाग संबंधी संसदीय स्थायी समित की सत्रहवीं रिपोर्ट, दिसम्बर, 2006, पैराग्राफ 6

वादकारियों को शीघ्र और सस्ता न्याय उपलब्ध कराना है ।[3]

1.6 प्रशासनिक न्याय-निर्णयन, जो अर्द्ध-न्यायिक प्रकृति का है, प्रशासनिक अधिकरणों का मुख्य कार्य है । प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम, 1985 के अधिनियमन का मूल उद्देश्य इस प्रकार था :-

(i) साधारण न्यायालयों में भीड़-भाड़ कम करना ; और

(ii) सेवा विषयक मामलों के विवादों के शीघ्र निपटान की व्यवस्था करना ।[4]

1.7 प्रशासनिक अधिकरणों की स्थापना उच्चतम न्यायालय के अलावा उच्च न्यायालयों समेत सभी न्यायालयों का सेवा विषयक मामलों पर न्यायिक पुनर्विलोकन के अपवर्जन के लिए ऐसे न्यायालयों के बोझ को कम करने और ऐसे मामलों का शीघ्र निपटान सुनिश्चित करने के प्रयोजन से ऐसे सरकारी कर्मचारी, जो ऐसे नियम और विनियम, जो कार्मिक प्रबंधन को लागू होते हैं, की स्पष्ट व्यवस्था के बावजूद सरकार के विनिश्चयों से व्यथित महसूस करते हैं, को प्रभावी आनुकल्पिक प्राधिकारी उपलब्ध कराने की दिशा में एक सही कदम है ।[5]

1.8 उच्चतम न्यायालय ने कई अवसरों पर प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम, 1985 के विभिन्न उपबंधों की संवैधनिक विधिमान्यता की परीक्षा की । एस. पी. सम्पत कुमार बनाम भारत संघ[6] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने प्रशासनिक अधिकरण के कार्यकरण को संवैधानिकतः

---

[3] वही, पैराग्राफ 6.1

[4] कार्मिक, लोक शिकायत, विधि और न्याय की विभाग संबंधी संसदीय स्थायी समिति की कार्मिक, लोक शिकायत और पेंशन मंत्रालय की अनुदान मांग (2004-2005) की प्रथम रिपोर्ट, अगस्त, 2004, पैराग्राफ 28.1

[5] पूर्वोक्त टिप्पण 2, पैराग्राफ 6.2

[6] (1985) 4 एस. सी. सी. 458.

ठोस सिद्धांतों के अनुसार लाने की दृष्टि से कतिपय उपाय करने के निदेश दिया । संशोधनकारी अधिनियम (1986 का अधिनियम 19) द्वारा प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम, 1985 में परिवर्तन किए गए । संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन उच्चतम न्यायालय की अधिकारिता को प्रत्यावर्तित किया गया । प्रशासनिक अधिकरणों के स्वरूप और अंतर्वस्तु विषयक कतिपय संशोधनों क अधीन रहते हुए उक्त मामले[7] में अंततः अधिनियम की संवैधानिक विधिमान्यता कायम रखा गया । सुझाए गए संशोधनों को एक अन्य संशोधनकारी अधिनियम (1987 का अधिनियम 51) द्वारा अधिनियम में शामिल किया गया । इस प्रकार प्रशासनिक अधिकरण उच्च न्यायालयों के प्रभावी और वास्तविक प्रतिस्थानी बने ।

1.9 लेकिन, 1997 में, एल. चन्द्रकुमार बनाम भारत संघ[8] वाले मामले में सात न्यायाधीशों की संविधान न्यायपीठ ने इस प्रकार अभिनिर्धारित किया :–

> " हमारे द्वारा स्वीकार किए गए तर्क को ध्यान में रखते हुए, हम अभिनिर्धारित करते हैं कि अनुच्छेद 323क का खंड 2(घ) और अनुच्छेद 323 का खंड 3(घ) जहां तक वे संविधान के अनुच्छेद 226/227 और 32 के अधीन उच्च न्यायालयों और उच्चतम न्यायालय की अधिकारिता का अपवर्जन करते हैं, असंवैधानिक हैं । अधिनियम की धारा 28 और अनुच्छेद 323क और 323ख के अधीन अधिनियमित सभी अन्य विधानों में "अधिकारिता का अपवर्जन" खंड उसी हद तक असंवैधानिक होगा । अनुच्छेद 226/227 के अधीन उच्च न्यायालयों को और संविधान के

---

[7] (1987) 1 एस. सी. सी. 124.

[8] जे. टी. 1997 (3) एस. सी. 589.

अनुच्छेद 32 के अधीन उच्चतम न्सयायालय को प्रदत्त अधिकारिता हमारे संविधान के अलंघनीय मूल ढांचे का भाग है । जब इस अधिकारिता को हटाया नहीं जा सकता तो अन्य न्यायालय और अधिकरण संविधान के अनुच्छेद 226/227 और 32 द्वारा प्रदत्त शक्तियों के निर्वहन में पूरक भूमिका अदा कर सकते हैं । संविधान के अनुच्छेद 323क और 323ख के अधीन सृजित अधिकरणों के पास कानूनी उपबंधों और नियमों की संवैधानिक विधिमान्यता की परख करने की सक्षमता है । तथापि, इन अधिकरणों के सभी विनिश्चय उस उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ के समक्ष समीक्षा के अधीन होंगे जिसकी अधिकारिता के भीतर संबद्ध अधिकरण आता है । फिर भी अधिकरण विधि के उन क्षेत्रों की बाबत जिनके लिए उनका गठन किया गया है प्रथम स्तर न्यायालय की तरह कार्य करते रहेंगे । अतः वादकारियों के लिए ऐसे मामलों में भी जहां वे कानूनी विधानों की शक्तिमत्ता (सिवाय जहां ऐसा विधान जो विशिष्ट अधिकरण का सृजन करता है, की चुनौती दी गई है) संबद्ध अधिकरण की अधिकारिता का अनदेखी कर प्रश्नगत करते हैं, सीधे उच्च न्यायालयों में आवेदन करने के लिए स्वतंत्र नहीं होंगे । अधिनियम की धारा 5(6) विधिमान्य और संवैधानिक है और इसका निर्वचन उस रीति से किया जाए जैसा हमने उपदर्शित किया है ।"

1.10 संविधान न्यायपीठ ने भी ऐसे व्यक्तियों की सक्षमता जो अधिकरणों को चलाते हैं और इस प्रश्न पर कि उन पर प्रशासनिक पर्यवेक्षण का कार्य कौन करता है, आदि मुद्दों पर भी विचार किया और प्रशासनिक अधिकरणों के कृत्य के सुधार के लिए सुझाव दिए ।

1.11 परिणामतः, प्रशासनिक अधिकरणों के आदेशों के विरुद्ध उच्च न्यायालयों में नैमित्तिक रूप से अपील की जा रही है जबकि एल. चन्द्र कुमार वाले मामले के पूर्व ऐसी स्थिति नहीं थी ।

1.12 18 मार्च, 2006 को, अन्ये बातो के साथ-साथ केन्द्रीय सरकार को प्रशासनिक अधिकरणों को समाप्त करने की शक्ति प्रदान करते हुए और एल. चन्द्र कुमार वाले मामले के अनुसार उच्च न्यायालय में अपील करने का अधिनियम मे उपबंध लाने को संशोधन करने के लिए राज्य सभा में प्रशासनिक अधिकरण (संशोधन) विधेयक,2006 (2006 का विधेयक सं. 28) पुरःस्थपित किया गया । कार्मिक, लोक शिकायत, विधि और न्याय की विभाग संबंधी संसदीय स्थायी समिति ने उक्त विधेयक पर अपनी सत्रहवीं रिपोर्ट मे ऐसा ही विचार व्यक्त नहीं किया और उच्च न्यायालय को अपील करने के उपबंध के संबंध में यह मत व्यक्त किया कि प्रशासनिक अधिकरणों की मूल अवधारणा को कायम रखा जाए और उच्च न्यायालय को अपील किया जाना अनावश्यक है, और यदि किसी कानूनी अपील का उपबंध किया जाना हो तो यह केवल उच्चतम न्यायालय में ही की जाए । अवमान के लिए दण्ड देने के लिए प्रशासनिक अधिकरणों का शक्ति प्रदान करने के लिए प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम, 1985 की धारा 17 के प्रस्तावित लोप के उपबंध के संबंध में समिति का यह मत था कि अधिकरणों के आदेशों का क्रियान्वयन सुनिश्चित करने के लिए, उनकी " सिविल अवमान" शक्तियों को प्रतिधारित किया जाए ।

1.13 यह उल्लेखनीय है कि प्रशासनिक अधिकरणों को सेवा विषयक मामलों के संबंध में उच्च न्यायालयों का प्रभावी और वास्तविक प्रतिस्थानी समझा जाता था ।

1.14 भारत के विधि आयोग ने "उच्चतर न्यायालय की संरचना और अधिकारिता" विषय पर अपनी 58वीं रिपोर्ट में यह मत व्यक्त किया :–

" 8.29 भारत में विशेष सेवा न्यायालयों के सृजन से ईमानदार और दक्ष सरकारी सेवक को गैर-अपराधीकरण या दोषिता के विरुद्ध वर्तमान से अधिक बेहतर और अधिक प्रभावी संरक्षण उपलब्ध हो सकेगा.....। इसके अतिरिक्त, सेवा न्यायालयों के सृजन से उच्च न्यायालयों और उच्चतम न्यायालय में बकाया मामलों की संख्या की वृद्धि में कमी होगी बशर्ते उन्हें संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन उच्च न्यायालय और अनुच्छेद 133 और 136 के अधीन उच्चतम न्यायालय की अधिकारिता के अधीन न रखा जाए ।

8.31 लेकिन, यदि उच्च न्यायालय और उच्चतम न्यायालय की पर्यवेक्षणीय अधिकारिता अक्षुण्ण रहती है, और सेवा न्यायालय का विनिश्चय इन उच्चतर न्यायालयों द्वारा पुनर्विलोकन के अधीन रहता है तो हम यह नही समझते कि सेवा न्यायालयों के सृजन से कैसे इन न्यायालयों में बकाया मामलों की बढ़ती मात्रा में कमी होगी ।

8.32 हमारी राय में, विद्यमान विधिक और संवैधानिक स्थिति पर्याप्त संरक्षण प्रदान करते हैं । अतः, हम पृथक् सेवा अधिकरण के सृजन की सिफारिश नहीं करते ।"

1.15 भारत के विधि आयोग ने 'उच्च न्यायालय बकाया मामला – नया दृष्टिकोण (1988) पर अपनी 124वीं रिपोर्ट में सेवा अधिकरणों के गठन का पक्ष लेते हुए भारत के तत्कालीन मुख्य न्यायमूर्ति श्री जे. सी. शाह की अध्यक्षता के अधीन 1969 में गठित "उच्च न्यायालयों के बकाया मामलों की समिति" की सिफारिश पर ध्यान दिया (रिपोर्ट के पैराग्राफ 1.14

द्वारा)। विधि आयोग ने भी अपनी 58वीं रिपोर्ट पर ध्यान देने के पश्चात् यह मत व्यक्त किया :-

" 1.15..... यह पहली बार काम के बहाव जो अप्रत्यक्षतः बकाया मामलों की समस्या से निपटने में सहायक हो सकता है, पहली बार उच्च न्यायालय की अधिकारिता को कम करने के लिए उच्च न्यायालय के विकल्प के रूप में विशेष अधिकरणों के सृजन का स्रोत है ।

1.21 विधि आयोग का यह दृढ़ मत है कि, जहां तक संभव हो, प्रोद्भूत अपील और व्यापक मूल अधिकारिता को न्याय की गुणता को नष्ट किए बिना नियंत्रित या कम किया जाए ।

1.27 संक्षेप मे, आयोग का दृष्टिकोण अपीलों की संख्या कम करना, विशिष्ट न्यायालयें/अधिकरणों की स्थापना करना, साथ ही साथ उच्च न्यायालय की अधिकारिता समाप्त करना है जिसे यदि विद्यमान विधि आयोग द्वारा प्रस्तुत रिपोर्टों के क्रियान्वयन द्वारा सक्रिय किया जाए तो बहुत सरसरी तौर पर निर्धारण के अनुसार वर्तमान उच्च न्यायालय के काम के अन्तर्बाह के लगभग 45% भाग में कमी आएगी । "

1.16 भारत के विधि आयोग ने 'केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण, उत्पाद-शुल्क, सीमा शुल्क और स्वर्ण (नियंत्रण) अपीली अधिकरण और आयकर अपीली अधिकरण के कार्यकरण का पुनर्विलोकन' (1998) पर अपनी 162वीं रिपोर्ट में यह सिफारिश किया कि एल. चन्द्र कुमार वाले मामले की इस आलोचना कि न्यायिक पुनर्विलोकन की अपनी शक्ति के प्रयोग में किसी प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश का न्यायिक पुनर्विलोकन नहीं किया जा सकता को ध्यान में रखते हुए प्रशासनिक अधिकरणों के आदेशों के

विरुद्ध उच्च न्यायालय में अपील की जाए जिसकी सुनवाई निश्चित रूप से खंड न्यायपीठ द्वारा की जाए । (पैराग्राफ 4.5 द्वारा)

1.17 तथापि, असलियत यह है कि प्रशासनिक अधिकरणों की स्थापना का उद्देश्य ही विफल हो जाएगा यदि उनके द्वारा न्यायनिर्णीत सभी मामलों को संबद्ध उच्च न्यायालयों के समक्ष जाना पड़े । फिर भी, उच्च न्यायालयों के न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति को उच्चतम न्यायालय की शक्ति का अलंघनीय नहीं कहा जा सकता है ।

1.18 उपरोक्त आलोक में, भारत के विधि आयोग ने स्वप्रेरणा से यह पता लगाने के लिए विषय का अध्ययन अपने हाथ में लिया कि क्या गतिरोध को दूर करने का कोई विकल्प है ।

2. प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम, 1985 की पृष्ठभूमि

2.1 कार्मिक, लोक शिकायत, विधि और न्याय मंत्रालय की विभाग संबंधी संसदीय स्थायी समिति ने प्रशासनिक अधिकरण (संशोधन) विधेयक, 2006 (18.3.2006 को राज्य सभा में यथा पुरःस्थापित) और 5 दिसम्बर, 2006 को संसद में प्रस्तुत अपनी सत्रहवीं रिपोर्ट में निम्नलिखित शब्दों में प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम, 1985 की पृष्ठभूमि, उद्देश्य और महत्व को व्यक्त किया :-

"5. भारत के संविधान निर्माताओं ने अपनी बुद्धिमत्ता से संविधान के अनुच्छेद 32, 136, 226 और 227 को विनिर्दिष्ट रूप से अधिनियमित करते हुए न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति उच्चतम न्यायालय और विभिन्न उच्च न्यायालयों में विनिहित किया । संविधान में अनुच्छेद 12, 14, 15, 16, 309 और 311 के अधिनियमन से सरकारी सेवकों और सार्वजनिक नियोजन के अन्य क्षेत्रों के कर्मचारियों की भी भर्ती और सेवा शर्त विषयक विवादों के न्यायनिर्णयन की मांग करते हुए सेवा विषयक मामलों की भारी संख्या में वाद उन विभिन्न उच्च न्यायालों के समक्ष आने आरंभ हो गए जिनकी न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति का अवलम्ब व्यथित कर्मचारियों द्वारा उक्त प्रयोजन के लिए लिया गया ।

5.1 उच्च न्यायालयों ने न्यायिक पुनर्विलोकन की अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए सेवा विधिशास्त्र विकसित करने में एक निश्चित और महत्वपूर्ण भूमिका निभायी । यथा पूर्वोक्त उच्च न्यायालयों के सकारात्मक योगदान के साथ सार्वजनिक क्षेत्र में कर्मचारियों की संख्या मे वृद्धि और उनकी भर्ती और सेवा शर्तों के

संदर्भ में बढ़ती बहुआयमी समस्या और उनके अधिकार और सम्मान के संरक्षक के रूप में उच्च न्यायालयों में उनकी आस्था और विश्वास के कारण उच्च न्यायालयों में सेवा विषयक मामलों के संस्थित किए जाने और लंबित रहने में धीरे-धीरे वृद्धि हुई । परिणामतः, इससे केन्द्रीय सरकार का ध्यान ऐसे विशेष मामलों के निपटान के लिए प्रभावी आनुकल्पिक संस्थागत तंत्र विकसित करने की समस्या की ओर केन्द्रित हुआ ।

5.2 1969 में न्यायमूर्ति जे. सी. शाह की अध्यक्षता में गठित समिति ने उच्च न्यायालयों और उच्चतम न्यायालय के समक्ष लंबित सेवा विषयक मामलों से निपटने के लिए एक स्वतंत्र अधिकरण के गठन की सिफारिश की । भारत के विधि आयोग की 124वीं रिपोर्ट में यह उद्धृत किया गया कि आस्ट्रेलिया में, स्थापित न्यायालयों के अलावा अनेक अधिकरण जैसे, प्रशासनिक अपील अधिकरण, माध्यस्थम् अधिकरण, कर्मकार प्रतिकर अधिकरण, पेंशन अधिकरण, योजना अपील अधिकरण समान अवसर अधिकरण और अन्य सृजित किए गए हैं । अधिकरण सृजित करने का यह कार्य इस विश्वास पर आधारित है कि स्थापित न्यायालय काफी दूर, काफी विधिवादी, काफी खर्चीले और कुल मिलाकर काफी धीमे हैं ।

5.3 भारत के विधि आयोग ने सरकारी सेवकों के विरुद्ध अनुशासनिक और अन्य कार्रवाई की बाबत उनकी अपीलों की सुनवाई के लिए केंद्र और राज्य में अनुभवी सिविल सेवकों के साथ विधिक रूप से अर्हित अध्यक्ष के अध्यक्षता वाले अपील अधिकरण या अधिकरणों की स्थापना करनेकी सिफारिश की थी । प्रथम प्रशासनिक सुधार आयोग ने भी सरकारी सेवकों के विरुद्ध अनुशासनिक कार्रवाई

की अपीलों पर विचार करने के लिए सिविल सेवा अधिकरणों के गठन की सिफारिश की थी । इस पर कुछ राज्य विधान मंडलों ने ऐसे मामलों का विनिश्चय करने के लिए अधिकरणों के गठन के लिए विधियां अधिनियमित किए । अनुच्छेद 323-क और 323-ख वाला भाग 14क भी 3 जनवरी, 1977 के प्रभाव से 42वें संविधान संशोधन विधेयक, 1976 द्वारा भारत के संविधान मेंअंतःस्थपित किया गया । अनुच्छेद 323-क ने अन्य बातों के साथ-साथ संसद को सरकारी सेवकों समेत सार्वजनिक नियोजन के क्षेत्र के कर्मचारियों के कतिपय प्रवर्गों कीभती और सेवा शर्तों की बाबत विवादों और परिवादों के न्यायनिर्णयन के लिए और इसी प्रकृति के विवादों या परिवादों के संबंध में अनुच्छेद 136 के अधीन उच्चतम न्यायालय के सिवाय सभी न्यायालयों की अधिकारिता के अपवर्जन का उपबंध करने के लिए भी विधि द्वारा प्रशसनिक अधिकरणों के गठन का उपबंध करने के लिए भी प्राधिकृत किया । तथपि, उक्त अनुच्छेद द्वारा यथानुध्यात प्रशासनिक अधिकरणों के गठन के लिए विधि अधिनियमित करने की दिशाम तत्काल कों कदम नहीं उठाया गया ।

5.4 अंततः, संसद् ने प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम, 1985 अधिनियमित किया जिस पर राष्ट्रपति की सहमति 27 फरवरी, 1985 को प्राप्त हुई । अधिनियम में अंतर्विष्ट उपबंधों के अनुसरण में, इसके अधीन गठित प्रशसनिक अधिकरण अधिनियम के अधीन आने वाले कर्मचारियों के सेवा विषयक मामलों की बाबत मूल अधिकारिता का प्रयोग करते हैं ।

अधिनियम का उद्देश्य

5.5 संविधान संशोधन विधेयक जिसके द्वारा अनुच्छेद 323-क को संविधान में अंतःस्थापित किए जाने कि ईप्सा की गई थी, के उद्देश्यों और कारणों के कथन में इस प्रकार उल्लेख किया गया था :

" उच्च न्यायालयों में बढ़ते बकाए मामलों को कम करने और सेवा विषयक मामलों का शीघ्र निपटान सुनिश्चित करने के लिए.....संविधान के अनुच्छेद 136 के अधीन ऐसे मामलों की बाबत उच्चतम न्यायालय की अधिकारिता का संरक्षण करते हुए ऐसे मामलों पर विचार करने के लिए प्रशासनिक अधिकरणों का उपबंध करना समीचीन समझा गया है ।"

5.6 प्रशासनिक अधिकरण विधेयक के पुरःस्थापित पाठ से जुड़े उद्देश्यों और कारणों का कथन जो पारित और अनुमोदित होने पर 1985 का अधिनियम हो गया, में भी इसी प्रकार उक्ति थी : " .....संविधान के पूर्वोक्त उबपंध के अधीन प्रशासनिक अधिकरणों की स्थापना करना आवश्यक हो गया है क्योंकि सेवा विषयक मामलों से संबंधित बहुत मामले विभिन्न न्यायालयों के समक्ष लंबित हैं । यह प्रत्याशा की जाती है कि अनन्यतः सेवा विषयक मामलों से निपटने के लिए ऐसे प्रशासनिक अधिकरणों के गठन से न केवल विभिन्न न्यायालयों के बोझ को कम करने और उसके द्वारा अन्य मामलों पर शीघ्रता से विचार करने का और समय मिलेगा बल्कि प्रशासनिक अधिकरणों के अंतर्गत आने वाले व्यक्तियों को उनकी शिकायत की बाबत शीघ्र अनुतोष भी उपलब्ध होगा ।"

5.7 प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम, 1985 के अनुसरण में, 1.11.1985 को केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण की स्थापना हुई । इस समय, इसकी 17 नियमित न्यायपीठें हैं जिसमें से 15 उच्च न्यायालयों के प्रधान स्थान पर चल रहे हैं और शेष दो जयपुर और लखनऊ में हैं । ये न्यायपीठें भी उच्च न्यायालयों के अन्य स्थानों पर चक्रानुसार अपनी बैठके करते हैं । अधिकरण अध्यक्ष, उपाध्यक्ष और सदस्यों से मिलकर बना है । उपाध्यक्ष और सदस्य न्यायिक और प्रशासनिक दोनों क्षेत्रों से लिए जाते हैं । राज्य प्रशासनिक अधिकरणों का गठन आंध्र प्रदेश, हिमाचल प्रदेश, उड़ीसा, कर्नाटक, महाराष्ट्र, तमिलनाडु, मध्य प्रदेश और पश्चिमी बंगाल राज्य सरकारों द्वारा प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम, 1985 के अधीन किया गया ।

5.8 केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण के अध्यक्ष की नियुक्ति का आरंभ व्यवहारतः भारत के मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा केन्द्रीय सरकार द्वारा इस आशय के किए गए प्रतिनिर्देश पर किया जाता है । केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण के उपाध्यक्ष और सदस्यों की नियुक्ति भारत के मुख्य न्यायमूर्ति के नामनिर्देशिती जो उच्चतम न्यायालय का पीठासीन न्यायाधीश होता है, की अध्यक्षता वाली चयन समिति की सिफारिशों के आधार पर की जाती है । नियुक्तियां भारत के मुख्य न्यायमूर्ति की सहमति अभिप्राप्त करने के पश्चात् कैबिनेट की नियुक्ति समिति के अनुमोदन पर की जाती है ।

5.9 राज्य प्रशासनिक अधिकरणों में रिक्तियों की नियुक्तियां राज्य सरकारों द्वारा भेजे गए प्रस्तावों पर राज्यपालों के अनुमोदन के आधार पर की जाती हैं । इसके पश्चात्, उनकी नियुक्तियां उन्हीं प्रक्रिया से गुजरती हैं जैसे केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण के मामले में

है ।

प्रशासनिक अधिकरिण अधिनियम, 1985 का महत्व

6. प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम, 1985 के अधिनियमन ने सेवा विषयक मामलों में व्यथित सरकारी सेवकों को न्याय दिलाने के क्षेत्र में एक नए अध्याय की शुरुआत की । अधिनियम में केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण और राज्य प्रशासनिक अधिकरणों की स्थापना का उपबंध है । इन अधिकरणों का गठन इस आधार-वाक्य पर आधारित है कि प्रशिक्षित प्रशासकों और न्यायिक अनुभवी व्यक्तियों से मिलकर बने । ये विशेष निकाय अपनी विशिष्ट जानकारी द्वारा शीघ्र और प्रभावी न्याय देने में बेहतर सुसज्जित होंगे । यह प्रत्याशा की गई थी कि न्यायिक सदस्यों और आधारभूत अनुभवी व्यक्तियों से बना यह उचित योग इस प्रयोजन को बेहतर ढंग से पूरा करेगा ।

6.1 प्रशासनिक अधिकरण अपनी अधिकारिता और प्रक्रिया की बाबत साधारण न्यायालयों से भिन्न है । ये अधिनियम के अंतर्गत आने वाले वादकारियों के सेवा विषयक मामलों के संबंध में ही अधिकारिता का प्रयोग करते हैं । ये साधरण न्यायालयों की अनेक तकनीकियों की जंजीरों से भी मुक्त हैं । अधिनियम की प्रक्रियागत सरलता का अंदाज इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि व्यथित व्यक्ति भी व्यक्तिगत रूप से इसके समक्ष उपस्थित हो सकता है । सरकार भी अपने विभागीय अधिकारियों या विधि व्यवसायियों के माध्यम से अपने पक्षकथन प्रस्तुत कर सकती है । इसके अतिरिक्त, वादकारी को अधिकरण के समक्ष आवेदन फाइल करने के लिए केवल 50/- रुपए नाममात्र की फीस संदत्त करनी होती है [प्रशासनिक अधिकरण

अधिनियम (प्रक्रिया) नियम, 1987 का नियम 7] । इस प्रकार, अधिकरण का उद्देश्य वादकारियों को शीघ्र और सस्ता न्याय उपलब्ध कराना है ।

6.2 प्रशासनिक अधिकरणों की स्थापना उच्चतम न्यायालय के अलावा उच्च न्यायालयों समेत सभी न्यायालयों का सेवा विषयक मामलों पर न्यायिक पुनर्विलोकन के अपवर्जन के लिए ऐसे न्यायालयों के बोझ को कम करने ओर ऐसे मामलों का शीघ्र निपटान सुनिश्चित करने के प्रयोजन से ऐसे सरकारी कर्मचारी, जो ऐसे नियम और विनियम, जो कार्मिक प्रबंधन को लागू होते हैं, की स्पष्ट व्यवस्था के बावजूद सरकार के विनिश्चयों से व्यथित महसूस करते हैं, को प्रभावी आनुकल्पिक प्राधिकारी उपलब्ध कराने की दिशा में एक सही कदम है ।"

2.2 कमल कान्ति दत्ता बनाम भारत संघ[9] वाले मामले में तत्कालीन मुख्य न्यायमूर्ति वाई. वी. चन्द्रचूड़ ने बहुमत की ओर से निर्णय देते हुए यह मत व्यक्त किया :–

" केन्द्र में शीर्षस्थ अधिकरण के साथ राज्य सरकारों द्वारा राज्य अधिकरणों की स्थापना, जो साधरणतः मामलों में वरिष्ठता के जटिल प्रश्न समेत सेवा शर्त विषयक विवादों का अंतिम निर्णायक होगा, न्यायालयों को सेवा मामलों में रिट याचिकाओं और अपीलों की बाढ़ से बचाएगा । ऐसे अधिकरणों की कार्यवाहियां अनौपचारिकता के गुण से युक्त हो सकती हैं और यदि उन्हें साक्ष्य के कठोर नियमों से नहीं बांधा जाएगा तो वे समाधन निकालने में

---

[9] (1980) 4 एस. सी. सी. 38.

समर्थ हो सकते हैं जो अधिक लोगों को संतुष्ट करेगा और केवल कुछ लोगों को ही असंतुष्ट करेगा । "

2.3 उस विधेयक के उद्देश्यों और कारणों का कथन जिसके द्वारा प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम, 1985 अधिनियमित हुआ, इस प्रकार है :–

" संविधान का अनुच्छेद 323क में यह उबपंध है कि संसद्, विधि द्वारा, संघ या किसी राज्य के अथवा भारत के राज्यक्षेत्र के भीतर या भारत सरकार के नियंत्रण के अधीन किसी स्थानीय या अन्य प्राधिकारी के अथवा सरकार के स्वामित्व या नियंत्रण के अधीन किसी निगम के कार्यकलाप से संबंधित लोक सेवाओं और पदों के लिए भर्ती तथा नियुक्त व्यक्तियों की सेवा की शर्तों के संबंध में विवादों और परिवादों के प्रशासनिक अधिकरणों द्वारा न्यायनिर्णयन या विचारण के लिए उपबंध कर सकेगी ।

2. विधेयक संघ के लिए एक प्रशासनिक अधिकरण और प्रत्येक राज्य के लिए अथवा दो या अधिक राज्यों के लिए संयुक्त प्रशासनिक अधिकरण अथवा राज्य के लिए पृथक् प्रशासनिक अधिकरण की स्थापना के लिए पूर्वोक्त संवैधानिक उपबंध को प्रभावी बनाने के लिए है । विधेयक यह उपबंध करने के लिए भी है :–

(क) प्रत्येक अधिकरण द्वारा प्रयोग की जाने वाली अधिकारिता, शक्तियां (जिनके अंतर्गत अवमान के लिए दंड देने की शक्ति है) और प्राधिकार ;

(ख) राज्य अधिकरणों द्वारा अनुसरण की जाने वाली प्रक्रिया (जिसके अंतर्गत परिसीमा के बारे में और साक्ष्य के नियमों

के बारे में उपबंध है) ;

(ग) सेवा संबंधी मामलों विषयक संविधान के अनुच्छेद 136 के अधीन उच्चतम न्यायालय के सिवाय सभी न्यायालयों की अधिकारिता का अपवर्जन ;

(घ) प्रत्येक प्रशासनिक अधिकरण को किसी वाद या अन्य कार्यवाहियों का अंतरण जो ऐसे अधिकरण की स्थापना से ठीक पहले किसी न्यायालय या अन्य प्राधिकारी के समक्ष लंबित है और जो, यदि ऐसे वाद हेतुक, जिन पर ऐसे वाद या कार्यवाहियां आधारित हैं, अधिकरण की स्थापना उत्पन्न होते तो, ऐसे अधिकरण की अधिकारिता के भीतर हो ।

3. संविधान के पूर्वोक्त उपबंध के अधीन प्रशासनिक अधिकरण की स्थापना आवश्यक हो गई है चूंकि सेवा संबंधी अनेक मामले विभिन्न न्यायालयों के समक्ष लंबित है । यह प्रत्याशा की जाती है कि सेवा संबंधी मामलों से अनन्यतः निपटने के लिए ऐसे प्रशासनिक अधिकरणों का गठन विभिन्न न्यायालयों के भार को कम करने में न केवल सहायक होगा और तद्द्वारा अन्य मामलों को शीघ्रता से निपटाने में उन्हे अधिक समय प्रदान करेगा बल्कि प्रशासनिक अधिकरणों के अंतर्गत आने वाले व्यक्तियों को उनकी शिकायतों के संबध में शीघ्र अनुतोष भी उपलब्ध करेगा ।"

2.4 प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम, 1985 की धारा 22(1) में यह उपबंध है कि अधिकरण सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 में अधिकथित प्रक्रिया से आबद्ध नहीं होगा लेकिन नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों द्वारा

मार्गदर्शित होगा और अधिनियम और केन्द्रीय सरकार द्वारा बनाए गए किन्हीं नियमों के उपबंधों के अधीन होगा, अधिकरण में अपनी जांच का स्थान और समय नियत करने और यह विनिश्चित करने कि सार्वजनिक स्थान में बैठे या प्राइवेट स्थान में समेत अपनी निजी प्रक्रिया विनियमित करने की शक्ति होगी ।

2.5 प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम की धारा 28 संविधानक अनुच्छेद 323क के खंड (2) के उपखंड (घ) के अधीन यथपरिकल्पित उच्चतम न्यायालय की अधिकारित के सिवाय सभी न्यायालयों की अधिकारिता को अपवर्जित करती हे । तद्नुसार, सेवा विषयक मामलों के संबंध में अनुच्छेद 226/227 के अधीन उच्च न्यायालयों की अधिकारिता को अधिनियम द्वारा अपवर्जित किया जाता है ।

3. विधि आयोग की 162वीं[10] रिपोर्ट

3.1 विधि आयोग ने अपनी 162वीं रिपोर्ट में निम्नलिखित शब्दों में राष्ट्रीय अपीली प्रशासनिक अधिकरण की स्थापना की आनुकल्पिक सिफारिश की :-

> " उच्चतम न्यायालय ने एल. चन्द्र कुमार (पूर्वोक्त) वाले मामले में यह अधिकथित किया है कि व्यथित पक्षकार केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण के विनिश्चय के विरुद्ध भारत के संविधान के अनुच्छेद 226/227 के अधीन संबद्ध उच्च न्यायालय की अधिकारिता का आश्रय ले सकते हैं । विधि के इस विकास का परिणाम पहले ही महसूस किया गया है । कर्नाटक सरकार ने कर्नाटक राज्य प्रशासनिक अधिकरण को समाप्त करने की ईप्सा की है । हाल ही में समाचारपत्रों में यह आया है कि केन्द्रीय सरकार भी केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण समाप्त करने का प्रस्ताव कर रही है । प्रशासनिक अधिकरण के विनिश्चय के विरुद्ध उपलब्ध उच्च न्यायालय द्वारा न्यायिक पुनर्विलोकन का उपचार और अनुच्छेद 136 के अधीन उच्चतम न्यायालय के समक्ष फिर संभावित अपील न केवल समय व्यतीत करने वाला बल्कि खर्चीला भी है । इसके अलावा, विभिन्न उच्च न्यायालय कर्मचारियों को लागू सेवा शर्त से संबंधित किसी कानूनी उपबंध का अलग-अलग निर्वचन कर सकते हैं । इस प्रकार, उच्च न्यायालय और परिणामतः केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरणों की न्यायपीठों के विनिश्चयों में एकरूपता की कमी वादकारियों के

---

[10] पूर्वोक्त पैराग्राफ 1.16

मस्तिष्क में भ्रम पैदा करेगी । इसके अतिरिक्त, यह लोगों की न्यायपालिका द्वारा न्याय चाहने की आस्था खोएगा और इस प्रकार लोकतांत्रिक मानकों को कम करेगा ।

आयोग का यह विचारित मत है कि उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 की धारा 20 के अधीन राष्ट्रीय उपभोक्ता विवाद प्रतितोष आयोग की तरह राष्ट्रीय अपीली प्रशासनिक अधिकरण गठित की जाए । इसका संचालन उच्च न्यायालय के सेवानिवृत्त मुख्य न्यायमूर्ति या भारत के उच्चतम न्यायालय के सेवानिवृत्त न्यायाधीश द्वारा किया जाएगा । केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण के विनिश्चय के विरुद्ध विधि और तथ्य के सारवान् प्रश्नों पर प्रस्तावित अपीली मंच को अपील की जा सकेगी ।

वादकारी के मुकदमे के खर्च को कम करने के लिए प्रस्तावित मंच की शाखाएं संपूर्ण देश में हो सकती हैं ।

प्रस्तावित अपीली न्यायालय का विनिश्चय केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण के सभी न्यायपीठों पर आबद्धकर होगा । प्रस्तावित मंच की प्रास्थिति उच्च न्यायालय से ऊंची लेकिन उच्चतम न्यायालय से नीचे होगी ।

प्रस्तावित अपीली मंच के विनिश्चय के विरुद्ध अपील उच्चतम न्यायालय में की जा सकेगी । उत्पाद शुल्क अधिनियम, 1962 की धारा 130-ड. के अधीन सीगाट के विनश्चय के विरुद्ध अपील उच्चतम न्यायालय में की जाती है । इसी प्रकार, उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 की धारा 23 के अधीन राष्ट्रीय आयोग के विनिश्चय के विरुद्ध अपील उच्चतम न्यायालय में की जाती है ।

उच्चतम न्यायालय को प्रथम अपील न्यायालय में संपरिवर्तित करना उचित नहीं होगा क्योंकि अधिकरण के आदेशों के विरुद्ध अपीलों की बाढ़ उच्चतम न्यायालय के महत्व को कम कर सकते हैं और परिणामतः हमारी लोकतांत्रिक नीति को नुकसान होगा (न्यायमूर्ति ए. एम. अहमदी द्वारा (1994) (2) जर्नल सेक्शन स्केल जे 1) । इस तरह, व्यथित पक्षकार को केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण के विनिश्चय के विरुद्ध उच्च न्यायालय की अनुच्छेद 226/227 के अधीन रिट अधिकारिता का अवलंब लेने का अधिकार नहीं होगा क्योंकि यह स्थिर विधि है कि जहां अपील करने का पर्याप्त उपचार हो वहां कोई व्यक्ति रिट अधिकारित का अवलंब नहीं ले सकता है (ए. आई. आर. 1996 एस. सी. 1209 ; ए. आई. आर. 1997 एस. सी. 2189 वाल मामले देखिए) । यद्यपि यह अविवादित है कि उस कानून की शक्तिमत्ता, जिसके अधीन अधिकरण का गठन किया गया है, की चुनौती दी जाती है तो कोई व्यक्ति भारत के संविधान के अनुच्छेद 226/227 के अधीन रिट अधिकारित का अवलंब ले सकता है लेकिन ऐसे मामलों की संख्या नगण्य होगी । इसी प्रकार, जब प्रस्तावित अपीली प्रशासनिक अधिकरण के विनिश्चय के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय के समक्ष अपील का अधिकार अनुध्यात है तो कोई व्यक्ति संविधान के अनुच्छेद 226/227 के अधीन उच्च न्यायालय की रिट अधिकारिता का अवलंब नहीं ले सकता है ।

यह प्रक्रिया एल. चन्द्र कुमार (पूर्वोक्त) वाले मामले के विनिश्चय के पश्चात् उभरी वर्तमान समस्याओं को सुलझाएगी ।

अपीली मंच का प्रस्तावित अध्यक्ष वही वेतन और भत्ते लेता रहेगा

जो पीठासीन न्यायाधीश के लिए स्वीकार्य है ।

एल. चन्द्र कुमार वाले मामले के अनुसरण में कैट/सैट के विनिश्चय (उनके सिवाय जिसमें उसकी शक्तिमत्ता जिसके अधीन अधिकरण का गठन किया गया है, चुनौती दी गई है) के विरुद्ध सभी लंबित रिट याचिकाएं प्रस्तावित अपीली मंच को अंतरित की जाएं ।

यह प्रस्ताव तभी प्रभावी और हितकर हो सकता है यदि अपीली मंच की न्यायपीठें उच्च न्यायालय के पैटर्न पर सभी महत्वपूर्ण मुख्यालयों, कम से कम प्रत्येक राज्य की राजधानी में स्थापित की जाएं ।

..... यह समय की पुकार है कि मामलों के शीघ्र निपटान के लिए ऐसे सभी मामले जिनमें विधि के एक या अधिक एक जैसे प्रश्न उठाए गए हैं और जिसके आधार पर मामलों का निपटान एक ही निर्णय द्वारा किया जा सकता है, को एक साथ समेकित किया जाए और उनकी एक साथ सुनवाई की जाए । इस प्रकार, उच्च न्यायालयों और अन्य अपीली न्यायालयों में विलम्ब और बकाया मामलों पर भारत के विधि आयोग की 79वीं रिपोर्ट में यह सिफारिश की गई है .....।"

(पैरा 4.8 और 4.9 द्वारा)

3.2 एल. चन्द्र कुमार वाले मामले के पश्चात् प्रशासनिक अधिकरण की स्थिति के बारे में पूर्वोक्त रिपोर्ट में विधि आयोग ने यह भी मत व्यक्त

किया :–

" यह अब उच्च न्यायालय का अनुकल्पी तंत्र नहीं रह गया है, लेकिन अधिकरण जिसके विनिश्चय उच्च न्यायालय, हालांकि, खंड न्यायपीठ द्वारा संवीक्षा के अधीन हैं । (वस्तुतः, कर्नाटक उच्च न्यायालय के सेवानिवृत्त न्यायाधीश, न्यायमूर्ति शिव शंकर भट, जिनकी नियुक्ति कर्नाटक राज्य प्रशासनिक अधिकरण के अध्यक्ष के रूप में हुई थी, ने एल. चन्द्र कुमार का विनिश्चय होने के ठीक पश्चात् यह शिकायत करते हए अपना पद त्याग कर दिया था कि चूंकि उक्त विनिश्चय द्वारा अधिकरण की स्थिति और प्रास्थिति को कम कर दिया गया है इसलिए वे राज्य प्रशासनिक अधिकरण के अध्यक्ष नहीं बने रह सकते ।) संविधान के अनुच्छेद 323-क और 323-ख के कतिपय खण्डों को अभिखंडित करते हुए..... उच्चतम न्यायालय ने वहीं उस सिद्धांत की उपयुक्तता की पुष्टि की जिस पर प्रशासनिक अधिकरणों का सृजन किया गया है । यह इस प्रतिवाद के अनुकूल नहीं था कि इन अधिकरणों को समाप्त कर दिया जाए क्योंक वे अपने कर्तव्यों के निर्वहन में प्रभावी साबित नहीं हुए और वे वह उद्देश्य प्राप्त करने में असफल रहे जिसके लिए उनका सृजन किया गया था । उच्चतम न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया है कि यद्यपि ये अधिकरण उच्च न्यायालयों की रिट अधिकारिता के अधीन हैं, फिर भी ये प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम, 1985 जिसके अधीन इनकी स्थापना हुई है, के उपबधों के सिवाय कानूनी उपबंधों और नियमों की संवैधानिक विधिमान्यता विषयक प्रश्नों का विनिश्चय करने के लिए सक्षम हैं । उच्चतम न्यायालय ने यह भी अस्वीकार

किया कि इन अधिकरणों में कोई तकनीकी/प्रशासनिक सदस्य नहीं होने चाहिए । उन्होंने कहा कि ये गैर-न्यायिक सदस्य ऐसा अनुभव प्रदान करते हैं जो न्यायिक सदस्यों में नहीं हो सकता है ।

उच्चतम न्यायालय की पूर्वोक्त उक्ति के आलोक में, भारत के विधि आयोग के लिए इन अधिकरणों के कार्यकरण के संबंध में कोई सारवान् उपाय या सिफारिश का सुझाव देने की कोई अधिक गुंजाइश ही नहीं रह जाती है ।"

(पैराग्राफ 4.5 द्वारा)

4. प्रशासनिक अधिकरण (संशोधन) अधिनियम, 2006 (2007 का 1) और प्रशासनिक अधिकरण (संशोधन) विधेयक, 2006

4.1 प्रशासनिक अधिकरण (संशोधन) अधिनियम, 2006 (2007 का 1) ने प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम, 1985 में कई परिवर्तन किए । अध्यक्ष, उपाध्यक्ष और अन्य सदस्यों की नियुक्ति के लिए अर्हता के संबंध में नई धारा 6 प्रतिस्थापित की गई । नई धारा 6 की उपधारा (1) मे यह उपबंध है कि कोई व्यक्ति अध्यक्ष के रूप में नियुक्ति के लिए तभी अर्ह होगा जब तक वह उच्च न्यायालय का न्यायाधीश है या रहा है । उक्त धारा की उपधारा (2)प्रशासनिक सदस्यों और न्यायिक सदस्यों की नियुक्ति के लिए अर्हताएं अधिकथित करती है । दो वर्ष की सेवा वाला भारत सरकार का सचिव और पांच वर्ष की सेवा वाला भारत सरकार का अपर सचिव प्रशासनिक सदस्य के रूप में नियुक्ति का पात्र है । कोई व्यक्ति जो उच्च न्यायालय का न्यायाधीश है या होने के लिए अर्हित है और दो वर्ष की सेवा वाला सदस्य-सचिव, भारत का विधि आयोग, भारत सरकार समेत विधि कार्य या विधायी विभाग का सचिव और पांच वर्ष की सेवा वाला विधि कार्य विभाग या विधायी विभाग के अपर सचिव न्यायिक सदस्य की नियुक्ति के पात्र हैं । इसके अतिरिक्त, उक्त धारा की उपधारा (3) में यह उबपंध है कि अध्यक्ष और केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण के प्रत्येक अन्य सदस्यों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा भारत के मुख्य न्यायमूर्ति के परामर्श के पश्चात् की जाएगी ।

4.2 2007 के अधिनियम 1 ने "उपाध्यक्ष" पद को समाप्त कर दिया जो पहले स्वतंत्र वर्ग के रूप में विद्यमान था । तथापि, धारा 3 का नया

खंड (प) "उपाध्यक्ष" को ऐसे सदस्य के रूप में परिभाषित करता है जिसे प्रत्येक ऐसे स्थानों पर, जहां अधिकरण के न्यायपीठों का गठन किया गया है, प्रशासनिक कार्य करने के लिए समुचित सरकार द्वारा प्राधिकृत किया गया है ।

4.3 संसदीय स्थायी समिति[11] ने इस प्रकार सिफारिश की :–

" उपचारात्मक कदम के रूप में, समिति ने निम्नलिखित मत व्यक्त किया :–

" ..... हो सकता है, उच्चतम न्यायालय का सेवानिवृत्त न्यायाधीश अध्यक्षता करे । और, हो सकता है, अन्य सदस्य न्यायपालिका से हो ; जिला न्यायाधीशों से नहीं ; बल्कि उच्च न्यायालय के स्तर से, हम किसी व्यक्ति को रख सकते हैं । और तब, तीसरा और चौथा सदस्य प्रशासन से हो सकता है जिससे कि अधिकरण की गरिमा और संख्या को उस हद तक बढ़ाया जा सके ।"

4.4 कार्मिक, लोक शिकायत ओर पेंशन मंत्रालय द्वारा संसदीय स्थायी समिति[12] को प्रस्तुत प्रशासनिक अधिकरण (संशोधन) विधेयक, 2006 के आधारिक टिप्पण में इस प्रकार उल्लेख है :–

" ..... आरंभतः यह परिकल्पित था कि सेवा विषयक मुकदमों का न्यायनिर्णयन प्रशासनिक अधिकरणों द्वारा किया जाए और इससे उच्च न्यायालयों का बोझ न बढ़े । इस प्रकार, अपीली अधिकारिता केवल भारत के उच्चतम न्यायालय के पास थी । तथापि, एल. चन्द्र

---

[11] पूर्वोक्त, टिप्पण 2, पैराग्राफ 11.10

[12] वही, पैराग्राफ 7

कुमार बनाम भारत संघ (ए. आई. आर. 1997 एस. सी. 1125) वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि संविधान के अनुच्छेद 226/227 के अधीन उच्च न्यायालय की रिट अधिकारिता का निर्वापन किसी अधिनियम द्वारा नहीं किया जा सकता है क्योंकि यह संविधान के आधारभूत ढांचे का भाग है । इस प्रकार, अब प्रशासनिक अधिकरणों के निर्णयों के विरुद्ध अपील संबद्ध उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ को की जाएगी ।

अनेक राज्य सरकारों ने आवश्यकतः इस आधार पर सैट को समाप्त करने का प्रस्ताव किया कि सैट के आदेश उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ के समक्ष अपील योग्य बनाए गए हैं, इससे केवल न्यायिक अधिक्रम में एक और सोपान की वृद्धि हुई है । राज्य सरकारों ने भी कहा है कि सैट को चलाना बहुत खर्चीला हो गया है । केन्द्र स्तर पर भी, यह निष्कर्ष निकाला गया है कि कैट की कुछ शाखाएं अब अनावश्यक हो गई हैं (या निकट भविष्य में अनावश्यक हो जाएंगी) चूंकि उनके समक्ष लंबित मामलों की संख्या कम हो गई है ।

.....

अब, प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम, 1985 न तो प्रशासनिक अधिकरण को समाप्त करने या अधिकरण के बाहर किसी न्यायालय को मामलों के अंतरण का उपबंध नहीं करता ।

.....

एल. चन्द्र कुमार वाले मामले में उच्चतम न्यायालय निर्णय के परिणामस्वरूप, केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण के आदेशों की अपील

अब नैमित्तिक रूप से उच्च न्यायालयों में की जा रही है जबकि पहले यह स्थिति नहीं थी । सर्वत्र, एल. चन्द्र कुमार/टी. सुधाकर प्रसाद वाले निर्णयों का उच्च न्यायालयों द्वारा किया गया निर्वचन यह है कि उच्च न्यायालय केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण के अपील न्यायालय के रूप में कार्य करें । यह मत व्यक्त किया जाना चाहिए कि यद्यपि चन्द्र कुमार/सुधाकर प्रसाद वाले निर्णय ने केवल विद्यमान विधिक और संवैधानिक उपबंधों की पुनः पुष्टि की फिर भी निर्वचन इस प्रकार किया जाए कि अधिकरण को अपीली अधिकारिता के मामले में उच्च न्यायालयों के अधीनस्थ स्थिति में रखता हो ।"

4.5 उच्च न्यायालय में अपील करने के लिए पूर्वोक्त विधेयक में उपबंध किया गया । विधेयक में यथाप्रस्तावित धारा 27घ(1) का उपबंध इस प्रकार है :–

"अधिकरण के किसी विनिश्चय या आदेश द्वारा व्यथित कोई व्यक्ति उच्च न्यायालय में अपील फाइल कर सकेगा ।"

4.6 पूर्वोक्त विधेयक अधिकरणों के उत्सादन के लिए समर्थकारी उपबंध बनाने और अधिकरण के उत्सादन के पश्चात् लंबित मामलों को कुछ अन्य प्राधिकारी को अंतरित करने का उपबंध करने हेतु प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम, 1985 का संशोधन करने के लिए भी है चूंकि मूल अधिनियम में अधिकरणों के उत्सादन के लिए कोई विनिर्दिष्ट उपबंध नहीं है ।

4.7 संसदीय स्थायी समिति[13] ने भी पूर्वोक्त विधेयक पर विभिन्न संगठनों से मत/सुझाव आमंत्रित किए । अनेक अभ्यावेदन/ज्ञापन प्राप्त हुए । ज्ञापन में उठाए गए मुख्य मुद्दों में से एक मुद्दा यह था :–

---

[13] वही, पैराग्राफ 3

" प्रशासनिक अधिकरणों का मामलों के निपटान का रिकार्ड अधीनस्थ न्यायालयों और उच्च न्यायालयों की तुलना में सर्वोत्तम रहा है । प्रशासनिक अधिकरणों का समापन उच्च न्यायालयों में लंबित मामलों की संख्या बढ़ाएगा जिसके द्वारा उच्च न्यायालयों पर अतिरिक्त बोझ पड़ने से नागरिकों को शीघ्र न्याय नहीं मिल पाएगा ।"

4.8 न्यायमूर्ति वी. एस. मलिमथ ने संसदीय स्थायी समिति[14] के समक्ष इस प्रकार अभिसाक्ष्य दिया :-

" ..... क्योंकि उच्चतम न्यायालय हमेशा अधिकरण के किसी विनिश्चय में हस्तक्षेप कर सकता है और उच्च न्यायालय भी यह कर सकता है, इसलिए, उच्च न्यायालय अधिकारिता प्रवर्तनशील बनी रहेगी । लेकिन, यदि तुम अधिकरण के आदेश के विरुद्ध अपील का उपबंध करते हो तो, तकनीकी रूप से, तुम यह कह सकते हो कि अनुच्छेद 226 और 227 का अब भी प्रयोग किया जा सकता है, लेकिन कोई न्यायाधीश अधिकारिता का प्रयोग नही करेगा । यदि तुम यह कहते हो कि अपील उच्च न्यायालय में हो तो मेरा यह कहना है कि तुम उच्च न्यायालय को मामलों के एक अन्य समूह से बोझिल कर रहे हो और तद्द्वारा सेवा विषयक मामलों के निपटान में विलम्ब कर रहे हो.....

.....

उन्होंने यह भी कहा कि व्यथित व्यक्ति अपील करना चाहते हैं यदि यह उपचार उपलब्ध है और यह कि तब उच्च न्यायालयों में मामलों

---

14 वहीं, पैराग्राफ 4.3

की बाढ़ आ जाएगी । यदि अधिक मामले होंगे, तो और विलम्ब होगा और यह संवैधानिक उपबंधों के अधीन अधिनियमिति के संपूर्ण प्रयोजन को विफल कर देगा ।

उनके द्वारा उठाया गया दूसरा प्रासंगिक मुद्दा यह है कि जिस तरीके से अब अधिनियम का क्रियान्वयन किया जा रहा है, यह अधिकरण को कमजोर कर रहा है । सर्वप्रथम, यह अधिकरण को उच्च न्यायालय का अधीनस्थ बना रहा है और इसकी गरिमा कम हो गयी है । द्वितीयतः, पहले सेवानिवृत्त मुख्य न्यायमूर्ति अधिकरण का अध्यक्ष हुआ करता था और लगता है कि अब, यह प्रक्रिया समाप्त हो गई है । अब उच्च न्यायालय का सेवानिवृत्त न्यायाधीश अध्यक्ष नियुक्त नहीं हो सकता है क्योंकि कानून में यह उबपंध नहीं है कि अधिकरण का अध्यक्ष भूतपूर्व मुख्य न्यायमूर्ति हो । इस प्रकार, अधिकरण की गरिमा कम हो गई है ।"

4.9 प्रशासनिक अधिकरणों की समाप्ति के मुद्दे पर संसदीय स्थायी समिति[15] के समक्ष बोलते हुए न्यायमूर्ति अशोक अग्रवाल ने यह अभिसाक्ष्य दिया कि समाप्ति का प्रस्ताव वैध नहीं है और जो सरकार विधान द्वारा कर सकती है, उसी ढंग द्वारा ही किया जाना चाहिए । उन्होंने यह राय दी कि विधायिका को वह शक्ति कार्यपालिका को प्रत्यायोजित नहीं करनी चाहिए : –

" .....यदि कोई विशिष्ट अधिकरण संतोषजनक रूप से कार्य नहीं कर रहा है तो उसी विशिष्ट अधिकरण के विरुद्ध कदम उठाया जाए । लेकिन उस आधार पर हम एक ही झटके में सारे देश के सभी

---

[15] वही, पैराग्राफ 4.4

अधिकरणों को समाप्त नहीं कर सकते क्योंकि विभिन्न राज्य विभिन्न सेवा-शर्तों द्वारा शासित हैं.....। "

4.10 2007 के अधिनियम 1 द्वारा प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम, 1985 में संशोधन कर परिवर्तन किए गए जो प्रारंभिक प्रकृति के हैं । प्रशासनिक सदस्य उन व्यक्तियों में से ही नियुक्त किए जा सकते हैं जिनका कार्यपालिक मशीनरी के सर्वोच्च पद पर न्यूनतम कार्यकाल रहा हो । नियुक्त न्यायिक और प्रशासनिक दोनों सदस्यों की प्रास्थिति की समानता उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों से की गई है । आंकड़े बताते हैं कि केवल विनिश्चयों की थोड़ी प्रतिशतता का निपटारा समय से नहीं हो पाया । लेकिन उच्च न्यायालयों में सेवा विषयक मामलों का लंबित रहना एक वास्तविकता है । उपचारात्मक उपाय दो-आयामी प्रतीत होते हैं । उनमें से एक आंतः अपील का उपबंध करना है जिसकी रुपात्मकता पर विचार-विमर्श कर अंतिम रूप दिया जा सकता है और तद्नुसार अधिनियम को संशोधित किया जा सकता है । ऐसी अपीली निकाय गठित कर, वर्तमान पैरामीटर की स्वभावतः पूर्ति हो जाएगी और लंबित रहने की अवधि हमेशा सीमित रहेगी ।

5. एस.पी. सम्पत कुमार से एल. चन्द्र कुमार वाले मामले की यात्रा और जटिलताएं

5.1 एस. पी. सम्पत कुमार बनाम भारत संघ[16] वाले मामले में संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन उच्चतम न्यायालय और अनुच्छेद 226 और 227 के अधीन उच्च न्यायालयों दोनों की न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति के अपवर्जन के आधार पर प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम, 1985 की संवैधानिक विधिमान्यता की चुनौती दी गई थी । मामले की सुनवाई के दौरान अधिनियम को संशोधित किया गया और अनुच्छेद 32 के अधीन सर्वोच्च न्यायालय की अधिकारिता को पुनःस्थापित किया गया । उच्चतम न्यायालय ने अंतिम विनिश्चय में यह अभिनिर्धारित किया कि प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम, 1985 की धारा 28 जो अनुच्छेद 226/227 के अधीन उच्च न्यायालयों की अधिकारिता को अपवर्जित करती है, असंवैधानिक नहीं है । न्यायालय ने यह न्यादेश दिया कि यह धारा पूर्णतः न्यायिक पुनर्विलोकन पर रोक नहीं लगाती । न्यायालय ने यह भी कहा कि 1985 अधिनियम के अधीन प्रशासनिक अधिकरण उच्च न्यायालयों के प्रतिस्थानी है और यहां तक कि अनुच्छेद 14, 15 और 16 वाले सभी सेवा विषयक मामलों पर विचार करेंगे । उसने अधिकरण के अध्यक्ष की अर्हताओं को परिवर्तित करने का भी सुझाव दिया । परिणमतः अधिनियम को पुनः 1987[17] में संशोधित किया गया ।

---

[16] पूर्वोक्त टिप्पण 7

[17] के. सी. जोशी, अधिकरणों की संवैधानिक प्रास्थिति, 41 जे. आई. एल. आई 116 (1999)

5.2 भारत संघ बनाम परमानन्द[18] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने सेवा नियमों की संवैधानिकता को विनिश्चित करने के लिए प्रशासनिक अधिकरणों के प्राधिकार को कायम रखा ।

5.3 सम्पत कुमार वाले मामले में, अनुच्छेद 323(2)(घ) की संवैधानिकता के मुद्दे की न तो चुनौती दी गई थी न ही कायम रखा गया और इसे उस पहलू पर नजीर होना नहीं कहा जा सकता । तत्पश्चात्, साकीनाला हरिनाथ बनाम आंध्र प्रदेश राज्य[19] वाले मामले में आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय की पूर्ण न्यायपीठ ने अनुच्छेद 323क के खंड (2) के उपखंड (घ) को असंवैधानिक घोषित किया । उसने यह अभिनिर्धारित किया कि यह उपबंध केशवानन्द भारती बनाम केरल राज्य[20] वाल मामले में उच्चतम न्यायालय के निर्णय के प्रतिकूल है । इसी बीच, आर. के. जैन बनाम भारत संघ[21] और एल. चन्द्र कुमार बनाम भारत संघ[22] वाले मामलों में शीर्षस्थ न्यायालय की दो तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठों ने भी यह सिफारिश की कि संपत कुमार वाले विनिश्चय पर पुनर्विचार किया जाए । इसलिए, उच्चतम न्यायालय की सात न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने अनुच्छेद 323क(2)(ध) की संवैधानिकता समेत व्यापक परिप्रेक्ष्य में मुद्दों पर विचार किया । उसने संविधान[23] के अनुच्छेद 226 और 227 के अधीन उच्च न्यायालयों की शक्तियों और अधिकारिता का प्रयोग करने के संबंध में प्रशासनिक अधिकरणों की शक्ति पर भी विचार किया ।

---

[18] ए. आई. आर. 1989 एस. सी. 1185.
[19] (1994) 1 ए.पी.एल.जे. (एच.सी.)1
[20] (1973) 4 एस. सी.सी. 225
[21] (1993) 4 एस. सी. सी. 119
[22] (1995) 1 एस. सी. सी. 400
[23] पूर्वोक्त, टिप्पण 17

5.4 उच्चतम न्यायालय ने सम्पत कुमार वाले मामले के प्रतिकूल एल. चन्द्र कुमार वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया कि ये अधिकरण उच्च न्यायालय के समान नहीं हैं । उसने आगे यह घोषित किया कि ऐसे अधिकरणों के विनिश्चयों के विरुद्ध अपील उस उच्च न्यायालय के दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ के समक्ष की जाएगी जिसकी अधिकारिता के भीतर अधिकरण आता है । तथापि, सर्वाधिक महत्वपूर्ण यह है कि निर्बंधित क्षेत्रों में इस अधिकरणों को उच्च न्यायालयों की अर्द्ध-समान प्रास्थिति दी गई है । इस प्रकार, अनुच्छेद 323क के अधीन स्थापित अधिकरण अब भी संविधान के अनुचछेद 14, 15 और 16 पर आधारित मामलों से सबंधित अधिनियमिति या नियम की संवैधानिकता की परीक्षा कर सकते हैं । अनुच्छेद 323ख के प्राधिकार के अधीन सृजित अधिकरणों में इसी प्रकार की शक्ति निहित होगी।[24]

5.5 संविधान में अनुच्छेद 323क और 323ख अंतःस्थापित करने का औचित्य आज भी विद्यमान है । उच्च न्यायालयों और उच्चतम न्यायालय में मामलों का लम्बित होना आज भी न्याय प्रशसन के लिए आसन्न खतरा है । इसलिए, प्रशासनिक अधिकरणों की काफी गुंजाइश है । इन अधिकरणों के कार्य का संक्षित अनुभव बुरा नहीं रहा है यद्यपि आगे सुधार की आवश्यकता है । कामन लॉ पूर्वावधारणा को ध्यान मे रखते हुए, अनुच्छेद 323क और 323ख के अधीन सृजित इन अधिकरणों की संवैधानिकता को बार-बार आक्षेपित किया गया है । सौभग्यवश, उच्चतम न्यायालय ने उस उद्देश्य को कायम रखा है जिसके लिए इन अधिकरणों को अस्तित्व में लाया गया । सम्पत कुमार से एल. चन्द्र कुमार वाले मामले की उनकी यात्रा निष्फल नहीं रही है । एल. चन्द्र कुमार वाले मामले ने

---

[24] वही.

सम्पत कुमार वाले मामले को उलट नहीं दिया है । इसने दृढ़तापूर्वक न्याय प्रशासन प्रणाली में प्रशासनिक अधिकरणों की भूमिका को स्वीकार किया है ।[25]

5.6 उच्चतम न्यायालय ने सम्पत कुमार वाले मामले में आगे इस बिन्दु को स्पष्ट किया :–

> " न्यायिक पुनर्विलोकन के आधारभूत और आवश्यक लक्षण को अलग नहीं किया जा सकता है लेकिन यह संविधान का संशोधन करने की संसद् की सक्षमता के भीतर होगा ताकि न्यायिक पुनर्विलोकन के लिए उच्च न्यायालय के स्थान पर दूसरा आनुकल्पिक संस्थागत तंत्र या व्यवस्था की जा सके, बशर्ते यह उच्च नयायालय से कम प्रभावी न हो । " [26]

5.7 माननीय न्यायमूर्ति रंगनाथ मिश्र, जिन्होंने सम्पत कुमार वाले मामले में बहुमत का निर्णय यह उल्लेख करने के पश्चात् लिखा कि उच्चतम न्यायालय द्वारा न्यायिक पुनर्विलोकन को पूर्णतः अप्रभावित छोड़ा गया है, ने यह अभिनिर्धारित किया :–

> " इस प्रकार उच्च न्यायालय की अधिकारिता का वर्जन पूर्णतः न्यायिक पुनर्विलोकन पर रोक नहीं लगाता । इस न्यायालय ने मिनर्वा मिल (ए. आई. आर. 1980 एस. सी. 1789) वाले मामले में यह इंगित किया था कि "न्यायिक पुनर्विलोकन के लिए प्रभावी आनुकल्पिक संस्थागत तंत्र या व्यवस्था" संसद् द्वारा की जा सकती है । इस प्रकार न्यायिक पुनर्विलोकन उपलब्ध कराने के लिए उच्च

---

[25] वही

[26] पूर्वोक्त टिप्पण 7, पृष्ठ 130

न्यायालय के स्थान पर आनुकल्पिक संस्था गठित करना संभव है.....अधिकरण को न्याय-प्रशासन की स्कीम में उच्च न्यायालय के प्रतिस्थानी न कि पूरक के रूप में अनुध्यात किया गया है.....इस प्रकार उच्च न्यायालय की अधिकारिता का वर्जन वस्तुतः चुनौती का विधिमान्य आधार नहीं हो सकता है।[27]

5.8 एल. चन्द्र कुमार वाले मामले में उच्चतम न्यायालय की सात न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने निम्नलिखित व्यापक मुद्दों पर विचार किया :-

(1) क्या अनुच्छेद 323ख के खंड (2) में विनिर्दिष्ट सभी या किन्हीं मामलों की बाबत या अनुच्छेद 323क के खंड (1) में विनिर्दिष्ट विवादों या परिवादों की बाबत अनुच्छेद 136 के अधीन उच्चतम न्यायालय की शक्ति के सिवाय 'सभी न्यायालयों' की अधिकारिता पूर्णतः अपवर्जित करना संविधान के अनुच्छेद 323क के खंड (2) के उपखंड (घ) द्वारा या अनुच्छेद 323ख के खंड (3) के उपखंड (घ) द्वारा, यथास्थिति, संसद् या राज्य विधानमंडलों को प्रदत्त शक्ति या संविधान के अनुच्छेद 226/227 के अधीन उच्च न्यायालयो को या अनुच्छेद 32 के अधीन उच्चतम न्यायालय को प्रदत्त न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति के प्रतिकूल है ।

(2) क्या संविधान के अनुच्छेद 323क या 323ख के अधीन गठित अधिकरणों के पास कानूनी उपबंध/नियम की संवैधानिक विधिमान्यता की परख करने की सक्षमता है?

(3) क्या इन अधिकरणों, जैसा ये इस समय कार्य कर रहे हैं, को न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति का निर्वहन करने में उच्च न्यायालय

---

[27] वही, पृष्ठ 138-139

का प्रभावी प्रतिस्थानी कहा जा सकता है? यदि नहीं, तो उन्हें प्राप्तव्य उद्देश्यों के अनुरूप बनाने के लिए क्या परिवर्तन किए जाने अपेक्षित हैं?

5.9 उच्चतम न्यायालय ने 18.3.1997 को इस प्रकार अभिनिर्धारित किया :-

" .....अनुच्छेद 323क का खंड 2 (घ) और अनुच्छेद 323ख का खंड 3(घ), जहां तक वे संविधान के अनुच्छेद 226/227 और 32 के अधीन उच्च न्यायालयों और उच्चतम न्यायालय की अधिकारिता का अपवर्जन करते हैं, असंवैधानिक हैं । अधिनियम की धारा 28 और अनुच्छेद 323क और 323ख के अधीन अधिनियमित सभी अन्य विधानों के "अधिकारिता का अपवर्जन" खंड उसी विस्तार तक असंवैधानिक होंगे । संविधान के अनुच्छेद 226/227 के अधीन उच्च न्यायालयों और अनुच्छेद 32 के अधीन उच्चतम न्यायालय को प्रदत्त अधिकारिता हमारे संविधान के अलंघनीय मूलभूत ढांचे का भाग है । जब इस अधिकारिता को निकाला नहीं जा सकता तो अन्य न्यायालय और अधिकरण संविधान के अनुच्छेद 226/227 और 32 द्वारा प्रदत्त शक्तियों के निर्वहन में पूरक भूमिका अदा कर सकते हैं ।"[28]

5.10 आगे यह अभिनिर्धारित किया गया :-

" अधिकरण ऐसे मामलों की सुनवाई के लिए सक्षम है जहां कानूनी उपबंधों की शक्तिमत्ता को प्रश्नगत किया गया है । तथापि, इस कर्तव्य का निर्वहन करते हए वे उच्च न्यायालयों और उच्चतम न्यायालय जिसे हमारे संवैधानिक गठन के अधीन विनिर्दिष्ट रूप से

---

[28] पूर्वोक्त टिप्पण 8, पैराग्राफ 101

ऐसा दायित्व सौंपा गया है, के तत्स्थानी के रूप में कार्य नहीं कर सकते हैं । इस बाबत उनका कार्य मात्र पूरक है और अधिकरणों के ऐसे सभी विनिश्चय संबद्ध उच्च न्यायालयों की खंड न्यायपीठ के समक्ष संवीक्षा के अधीन होंगे । परिणामतः अधिकरणों को अधीनस्थ विधानों और नियमों की शक्तिमत्ता की परख करने की भी शक्ति होगी । तथापि, अधिकरणों की यह शक्ति एक महत्वपूर्ण अपवाद के अधीन होगी । अधिकरण इस स्थिर सिद्धांत का पालन करते हुए, कि ऐसा अधिकरण जो उसी अधिनियम का उत्पाद है, उसी अधिनियम को असंवैधानिक घोषित नहीं कर सकता है, अपने मूल कानूनों की शक्तिमत्ता से सबंधित किसी प्रश्न को ग्रहण नहीं करेंगे । एकमात्र ऐसे मामलों में, संबद्ध उच्च न्यायालय के समक्ष सीधे आवेदन किया जा सकेगा । ऐसे मामलों में, जहां उन्हें विनिर्दिष्ट रूप से अपने मूल कानूनों के आधार पर न्यायनिर्णयन की शक्ति प्राप्त है, दिए गए इन अधिकरणों के सभी अन्य विनिश्चय भी अपने संबद्ध उच्च न्यायालयों की खंड न्यायपीठ के समक्ष संवीक्षा के अधीन होंगे । हम यह कह सकते हैं कि अधिकरण विधि के ऐसे क्षेत्रों की बाबत जिसके लिए उनका गठन हुआ है, प्रथम स्तर के न्यायालय के रूप में कार्य करते रहेंगे । इसके द्वारा, हमारा यह अभिप्राय है कि वादकारी ऐसे मामलों में भी सीधे उच्च न्यायालों में आवेदन नहीं कर सकेंगे जहां वे कानूनी विधानों (यथावर्णित जहां उस विधान, जो विशिष्ट अधिकरण को सृजित करता है, की चुनौती दी गई है, के सिवाय) की शक्तिमत्ता को संबद्ध अधिकरणों की अधिकारिता की अनदेखी कर प्रश्नगत करते हों।" [29]

---

[29] वही, पैराग्राफ 95

5.11 यह भी अभिनिर्धारित किया गया :

" जहां तक अनुच्छेद 226/227 के अधीन उच्च न्यायालयों और अनुच्छेद 32 के अधीन इस न्यायालय की अधिकारिता प्रतिधारित है, वहां ऐसा कोई कारण नहीं है कि संविधान के उपबंधों के विरुद्ध विधानों की विधिमान्यता के परख की शक्ति अधिनियम के अधीन सृजित प्रशासनिक अधिकरणों या संविधान के अनुच्छेद 323ख के अधीन सृजित अधिकरणों को नहीं दी जा सकती है । यह स्मरणीय है कि अनुच्छेद 323क और 323ख से निःसृत प्राधिकार के अलावा, संसद् और राज्य विधानमंडल दोनों के पास उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय की मूल अधिकारिता में परिवर्तन करने की विधायी सक्षमता है । यह शक्ति संसद् को सूची 1 की प्रविष्टि 77, 78, 79 और 95 और राज्य विधानमंडलों को सूची 2 की प्रविष्टि 65 के अधीन उपलब्ध है ; सूची 3 की प्रविष्टि 46 का भी आधार इस प्रयोजन के लिए संसद् और राज्य विधान मंडल दोनों द्वारा लिया जा सकता है । " [30]

उच्चतम न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि कोई भी एकल व्यष्टि प्रशासनिक अधिकरण द्वारा विनिश्चित किसी मामले में सीधे उच्चतम न्यायालय में आवेदन नहीं कर सकेगा । उसे पहले उच्च न्यायालय (खंड न्यायपीठ) में आवेदन करना चाहिए और इसके पश्चात् ही वह संविधान के अनुच्छेद 136 के अधीन उच्चतम न्यायालय में आवेदन कर सकेगा ।

---

[30] वही पैराग्राफ 82

5.12 उच्चतम न्यायालय ने सिफारिश किया कि संघ सरकार ऐसे व्यक्ति जो अधिकरणों को चलाते हैं, की नियुक्ति/क्षमता के मुद्दे, विधि और यह प्रश्न कि उन पर किसका प्रशासनिक पर्यवेक्षण हो, और सभी अधिकरणों को एक नोडल विभाग, अधिमानतः, विधि विभाग (विधि मंत्रालय) के अधीन रखने के संबंध में कार्रवाई आरंभ करे ।

5.13 इस निर्णय के परिणामस्वरूप, केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण के आदेशों के विरुद्ध अपीलें नैमित्तिक रूप से उच्च न्यायालयों में की जाती है जबकि पहले यह स्थिति नहीं थी ।

एल. चन्द्र कुमार की जटिलाएं

5.14 प्रोफेसर के.सी.जोशी, भूतपूर्व विभागाध्यक्ष विधि विभाग और डीन, विधि संकाय, कुमायूं विश्वविद्यालय ने "अधिकरणों की संवैधानिक प्रास्थिति[31]" के अपने लेख में यह कहा :-

> " प्रशासनिक अधिकरण सामान्य, सस्ता और शीघ्र न्याय उपलब्ध करते हैं । डायसी ने ऐसे अधिकरणों से जनता की स्वतंत्रता को खतरे की आशंका व्यक्ति की थी लेकिन वे न्यायिक प्रशासन प्रणाली के नियमित अंग हो गए हैं । ब्रिटिश संसद् ने अधिकरणों और 1958 में जांच अधिनियम को अधिनियमित किया जिसे 1971 अधिनियम में समेकित नहीं किया गया है । 1950 में भारत के संविधान के पूर्व, प्रशासनिक न्यायनिर्णय प्रचलित था । 1973 के पूर्व संविधान ने अनुच्छेद 136 और 227 में अधिकरण शब्द का प्रयोग किया था । 1973 में,संविधान (बत्तीसवें संशोधन) अधिनियम द्वारा विनिर्दिष्ट रूप से प्रशासनिक अधिकरण का उपबंध किया गया ।

---

[31] पूर्वोक्त टिप्पण 17

कल्याण सिद्धांत को स्वीकार करने पर सार्वजनिक सेवाओं और लोक सेवकों की काफी वृद्धि हुई । न्यायालय, विशेषकर उच्च न्यायालयों में सेवा विषयक मामलों की बाढ़ आ गयी । इसलिए, स्वर्ण सिंह समिति ने अन्य बातों के साथ-साथ संवैधानिक न्याय निर्णायक प्रणाली के भाग के रूप में प्रशासनिक अधिकरणों की स्थापना की सिफारिश की । परिणामतः, संविधान (बयालीसवें संशोधन) अधिनियम, 1976 द्वारा अनुच्छेद 323क और 323ख वाला भाग 14क संविधान में शामिल किया गया । अनुच्छेद 323क में सार्वजनिक सेवाओं पर नियुक्त व्यक्तियों की भर्ती और सेवा शर्त की बाबत विवादों और परिवादों के न्याय निर्णयन या विचारण के लिए प्रशासनिक अधिकरणों की स्थापना का उपबंध है । अनुच्छेद 323ख कर, विदेशी विनियम, उद्योग और श्रम विवाद, भूमि सुधार, शहरी संपत्ति पर अधिकतम सीमा, संसद् और राज्य विधान मंडलों का निर्वाचन, आदि से संबंधित विवादों, परिवादों या अपराधों के न्याय निर्णय या विचारण के लिए अधिकरणों के सृजन का उपबंध करता है । इन दो अनुच्छेदों मे से कोई भी अनुच्छेद स्व-निष्पाद्य नहीं है । संसद् को अनुच्छेद 323-क के अधीन विधि अधिनियमित करने की अनन्य शक्ति है जबकि संसद् और राज्य विधान मंडल अपनी विधायी क्षमता के अधीन अनुच्छेद 323ख के विषयों पर विधियां बना सकते हैं । "

5.15 सेवानिवृत्त न्यायाधीशों द्वारा अधिकरणों की अध्यक्षता करने के बारे में उच्चतम न्यायालय द्वारा व्यक्त राय बिलकुल सही नहीं है । ये सेवानिवृत्त न्यायाधीश अनुभवी व्यक्ति हैं जिन्होंने अपने जीवन का मुख्य भाग न्यायनिर्णयन कार्य में बिताया है । उन लोगों ने अपने समक्ष आए वादों और

संविवादों का विनिश्चय किया है । उन लोगों के पास अच्छा अनुभव और विनिश्चय करने की प्रक्रिया का ज्ञान है । वे न्यायनिर्णय की कला में निष्णात हैं । उन्हें न्यायालय प्रक्रियाओं की पूरी जानकारी है । उन लोगों ने अपने समक्ष आए सिविल, दांडिक, कर, श्रम और संवैधानिक विषयों के निपटान में कतिपय विशेषज्ञता अर्जित की है ।

5.16 जैसा पहले कहा गया है, पिछले पिशाच के ढेर को नष्ट करने के लिए बहु-कांटेदार हमला अनिवार्य है । संविधान निर्माताओं में पूर्वानुमान करने की दृष्टि थी कि ऐसी स्थिति पैदा हो सकती है जहां सेवानिवृत्त न्यायाधीशों के विवेक का सहारा लेना पड़ेगा इसलिए, उन लोगों ने इस बाबत पर्याप्त उपबंध बनाए थे । संविधान के अनुच्छेद 224क में यह उपबंध है कि संविधान के भाग 5 के अध्याय 4 में किसी बात के होते हुए भी किसी राज्य के उच्च नयायालय का मुख्य न्यायमूर्ति, किसी भी समय, राष्ट्रपति की पूर्व सहमति से किसी व्यक्ति से, जो उस उच्च न्यायालय या किसी अन्य उच्च नयायालय के न्यायाधीश का पद धारण कर चुका है, उस राज्य के उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में बैठने और कार्य करने का अनुरोध कर सकेगा और प्रत्येक ऐसा व्यक्ति, जिससे इस प्रकार अनुरोध किया जाता है, इस प्रकार बैठने और कार्य करने के दौरान ऐसे भत्तों का हकदार होगा जो राष्ट्रपति आदेश द्वारा अवधारित करे और उसे उच्च न्यायालय के न्यायाधीश की सभी अधिकारिता, शक्तियां ओर विशेषाधिकार होंगे, किन्तु उसे अन्यथा उस उच्च न्यायालय का न्यायाधीश नहीं समझा जाएगा । वहां एक ऐसा उपबंध है जिसमें यह उल्लेख है कि इस शक्ति का प्रयोग संबद्ध व्यक्ति की सहमति से ही किया जा सकता सहै । विरले ही कभी इस शक्ति का अवलंब लिया गया है ।

5.17 अब, प्रत्येक उच्च न्यायालय में ऐसे अनेक मामले हैं जो पांच वर्ष से अधिक पुराने हैं । उनमे से कुछ अप्रयुक्त हो गए हैं ; उनमें से कुछ असंगत हो गए हैं ; कुछ उपशमित हो गए हैं और कुछ ऐसे मामले होते हैं जिसमें पक्षकार मात्र मामलों में निपटान के विलम्ब के कारण मुकदमा लड़ने का हित खो देते हैं । निस्संदेह, ऐसे मामले होते हैं जिनमें मामलों का न्यायनिर्णयन किया जाना था और निर्णय दिया जाना था ।

5.18 यह ध्यान देना भी प्रासंगिक है कि कुछ राज्य सरकारों ने राज्य प्रशासनिक अधिकरणों को समाप्त कर दिए हैं । उदाहरणार्थ, तमिलनाडु सरकार ने चेन्नई में कार्य कर रहे राज्य प्रशासनिक अधिकरण को समाप्त कर दिया है क्योंकि उनके अनुसार निपटान संख्या अल्पतम थी और असमाधानप्रद और खर्चीला था । इसलिए, तमिलनाडु के राज्य सरकारी सेवकों को अपनी शिकायतों के प्रतितोष के लिए संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन उच्च न्यायालय में आवेदन करना होता है चूंकि अधिकरण पहले ही समाप्त किए जा चुके हैं । इसलिए, उच्च न्यायालय प्रथम स्तर का न्यायालय है जहां तक राज्य सरकारी सेवकों का संबंध है, जबकि केन्द्रीय सरकारी सेवक जो चेन्नई के केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण की अधिकारिता के भीतर रहते हैं, को अपने सेवा विषयक मामलों से संबंधित अपनी शिकायतें करने के दो मंच हैं । केन्द्रीय सरकारी सेवक, यदि अधिकरण के विनिश्चय से व्यथित हैं, तो उच्च न्यायालय में जा सकते हैं और प्रतितोष के लिए संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन उसकी अधिकारिता का अवलंब ले सकते हैं । इसमें कोई विसंगति नहीं है । परिणाम यह है कि चेन्नई स्थित केन्द्रीय सरकारी कर्मचारी अधिकरण और उच्च न्यायालय की भी अधिकारिता का फायदा उठा सकते हैं और फिर उच्चतम न्यायालय में आते हैं, जबकि राज्य प्रशासनिक अधिकरण की

समाप्ति के पश्चात् राज्य सरकार के केवल संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन सेवक उच्च न्यायालय में ही आवेदन कर सकते हैं जिनके मामले की सुनवाई एकल न्यायाधीश द्वारा या कभी-कभी खंड न्यायपीठ द्वारा की जा सकेगी । यदि इसकी सुनवाई एकल न्यायाधीश द्वारा की जाती है तो व्यथित पक्षकार को खंड न्यायपीठ के समक्ष ही स्वयं उच्च न्यायालय में अपील का अधिकार होगा । इस प्रकार, सेवा विषयक मामले एकल न्यायाधीश के समक्ष और इसके पश्चात् उच्चतम न्यायालय आने के पूर्व वर्षों तक खंड न्यायपीठ के समक्ष लंबित होंगे । इस प्रकार, तमिलनाडु के राज्य सरकार के सेवक शीघ्र न्याय के नियम से वंचित हैं । यह अभिलेख का विषय है कि सेवा विषयक मामलों पर उच्च न्यायालय के समक्ष काफी मामले लंबित हैं और यह कि इनका निपटान उच्च न्यायालय में रिक्तियों के न भरने और अवसंचरना, आदि, आदि की अनुपलब्धता जैसे विभिन्न अन्य घटकों के कारण थोड़े समय के भीतर नहीं हो सकता है ।

5.19 एल. चन्द्र कुमार वाले मामले में उच्चतम न्यायालय के निर्णय के भी ऐसे परिणाम होने की संभावना है, जो अवांछनीय है । उच्चतम न्यायालय का अपना यह अनुमान सही नही हे कि उच्चतम और उच्च न्यायालयों के न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति की पहुंच और विस्तार एक जैसा नहीं है । ऊपर पहले ही यह इंगित किया गया है कि केशवानन्द मामले के पश्चात् भारत में न्यायिक पुनिर्वलोकन शक्ति के अंतर्गत निम्नलिखित मामले आते हैं । न्यायालयों को निम्नलिखित को अभिखंडित करने की शक्ति है :–

(i) अधीनस्थ विधान जो मूल अधिनियम के अधिकारातीत है ;

(ii) संसद् और राज्य विधानमंडलों के विधान यदि ये संविधान के उपबंधों का उल्लंघन करते हैं ; और

(iii) संवैधानिक संशोधन जो संविधान के मूलभूत ढांचे का अतिक्रमण करता है ।[32]

5.20 उच्चतम न्यायालय ने केशवानन्द वाले मामले में, विश्व के लोकतांत्रिक संविधानों के इतिहास में पहली बार उपरोक्त वर्णित तीसरी शक्ति अर्थात् संवैधानिक संशोधनों को असंवैधानिक घोषित करने की शक्ति, यदि वे संविधान के मूलभूत ढांचे का अतिक्रमण करते हैं, स्वयं में निहित कर लिया । हो सकता है कुछ लोग महसूस करते हों कि उच्चतम न्यायालय द्वारा इस शक्ति का धारण प्रतिनिधायी लोकतंत्र के संदर्भ में काफी बुरा है । लेकिन इस महत्वपूर्ण शक्ति के प्रयोग को उच्च न्यायालयों को भी और चंद्र कुमार वाले मामले के पश्चात् सभी तरह के अधिकरणों को विस्तारित करना और अधिक बुरा होता । एक अनोखी स्थिति पैदा हो सकती है कि विभिन्न उच्च न्यायालय विभिन्न राज्यों मे संवैधानिक संशोधनों के विभिन्न उपबंधों को अभिखंडित करें और भारत का संविधान, जो देश की मूल विधि है, विभाजित और खंडित रीति में प्रवर्तन में हो । वस्तुतः, साकीनाला हरिनाथ बनाम आंध्र प्रदेश वाले मामले में आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने अनुच्छेद 323क(2)(घ) को अभिखंडित कर दिया जिसने उच्च न्यायालय को सेवा विषयक मामलों की अधिकारिता से वंचित कर दिया था । अस्थिर मिली-जुली सरकार से जो किसी कीमत पर बचे रहने की राजनीति पर निर्भर है, उच्चतम न्यायालय को सुविधाजनक रूप से आगे किसी पक्षकार द्वारा आगे अपील की मांग

---

[32] वी. नागेश्वरराव और जी.बी. रेड्डी, न्यायिक पुनर्विलोकन और अधिकरणों का सिद्धांत : गति अवरोधक आगे है, 39, जे.आई. एल. आई. 411(1997)

किए बिना भूत, वर्तमान या भविष्य के संवैधानिक संशोधनों के असुविधाजनक उपबंधों के अभिखंडित करने हेतु उच्च न्यायालयों की रिट याचिकाओं की दुरभिसंधि से इनकार नहीं किया जा सकता है । अब, चंद्र कुमार वाले निर्णय की यह अच्छाई है कि संविधान के तथाकथित मूलभूत ढांचे के अतिक्रमण के आधार पर संवैधानिक संशोधनों के विभिन्न उपबंधों को अभिखंडित करने के लिए उसी राज्य के भीतर विभिन्न अधिकरणों तक इन घातक परिणामों को विस्तारित किया जा सकता है ।[33]

5.21 इस प्रकार, यथापूर्वोक्त,उच्चतम न्यायालय को केशवानन्द में यथप्रतिपादित मूल ढांचा सिद्धांत के संबंध में उच्च न्यायालयों के न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति को भारत के उच्चतम न्यायालय की शक्ति के रूप में समाविष्ट नहीं करना चाहिए । उच्चतम न्यायालय को संविधान के मूल ढांचे का अतिक्रमण करने के लिए संवैधानिक संशोधनों को अभिखंडित करने की शक्ति अनन्यतः स्वयं में आरक्षित रखनी चाहिए । उच्च न्यायालयों को यह शक्ति देने से भयंकर संवैधानिक भ्रम पैदा होगा और यह भ्रम बुरी तरह से अस्त-व्यस्त कर देगा यदि इसका विस्तार आगे सभी प्रकार के अधिकरणों को किया जाता है । जहां उच्चतम न्यायालय ने एक ओर इन सेवा अधिकरणों द्वारा दिए गए न्याय की गुणता के बारे में अपनी गंभीर चिन्ता व्यक्त की वहीं दूसरी ओर न्यायालय संपूर्ण देश के सभी प्रकार के अधिकरणों को केशवानन्द सिद्धांत के अधीन न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति के वितरण की इच्छुक थी ।[34]

5.22 यह स्मरण रहे कि यद्यपि संसद् को अनुच्छेद 32(1) के अधीन उच्चतम न्यायालय की शक्ति पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना "अन्य

---

[33] वही

[34] वही

न्यायालयों" को न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति प्रदान करने की शक्ति अनुच्छेद 32(3) के अधीन है । फिर भी उसने अब तक ऐसा नहीं किया जब उसने विभिन्न अधिनियमितियों के अधीन विभिन्न अधिकरण स्थापित किए । लेकिन असाधारण अकारण चेष्टा करते हुए उच्चतम न्यायालय ने संविधान की सर्वोच्चता कायम रखने के नाम पर न्यायिक पुनर्विलोकन की सर्वोच्चता कायम रखते हुए चन्द्र कुमार वाले मामले में ऐसा किया ।[35]

5.23 अनुच्छेद 226 के अधीन न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति अनुच्छेद 32 के अधीन उच्चतम न्यायालय की तरह अलंघनीय नही है । जहां अनुच्छेद 32(4) उच्चतम न्यायालय की न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति की सर्वोच्चता का अनुरक्षण करता है वहीं अनुच्छेद 226 के अधीन कोई व्यावृत्ति उपबंध नहीं है । सम्पत कुमार वाले मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा यथा अभिनिर्धारित उच्च न्यायलयों की प्रतिस्थानी न कि पूरक के रूप में अधिकरणों की स्थापना संविधान की भाषा और भावना के पूर्णतः अनुकूल है ।[36]

5.24 जैसाकि स्वयं उच्चतम न्यायालय ने चन्द्र कुमार वाले मामले में यह मत व्यक्त किया है, विवाद निपटान के विशेष प्रवर्ग से निपटने के लिए विशेषज्ञ निकायों की आवश्यकता, न्याय परिदान तरीकों में विलंब कम करने की आवश्यकता और देश के सामान्य न्यायालयों में निर्णय सूचियों की बाढ़ जैसी कतिपय अप्रतिरोध्य परिस्थितियों के कारण अधिकरण प्रणाली की स्थापना की आवश्यकता पड़ी । उन अधिकरणों का प्रयोजन और तर्काधार ही विफल हो जाएगा यदि उन सभी मामलों को पुनः संबद्ध उच्च

---

[35] वही
[36] वही

न्यायालयों के समक्ष प्रस्तुत किया जाना संभव बनाया जाएगा ।[37]

5.25 डायसी के विधिसम्मत नियम के अतिनैतिक मत की तुलना में ड्रायट एडमिनिस्ट्रेटिफ पर विचार करना अतिप्रासंगिक नही है । आनुकल्पिक विवाद निपटान तंत्र की स्थापना अब कामन लॉ और यूरोपीय विधिक प्रणालियों तथा अन्य अधिकारिताओं में सार्वभौमिकतः स्वीकार्य है । एल. चन्द्र कुमार वाले मामले में उच्चतम न्यायालय उचित ही अधिकरणों द्वारा दिए गए न्याय के कार्यकरण और गुणता से क्षुब्ध था । अधिकरणों की संरचना में भी विशिष्ट संरचना की आवश्यकता है । इसमें कोई संदेह नहीं है कि अधिकरणों के सदस्यों और विभिन्न उच्च न्यायालयों और उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति के तरीके, संरचना और अर्हताओं के बारे में कई उपचारात्मक उपाय किए जाने चाहिए ।[38]

---

[37] वही

[38] वही

6. सशस्त्र बल अधिनियम, 2007

6.1 सशस्त्र बल अधिकरण अधिनियम, 2007 (2007 का 55) हाल ही में कानूनी पुस्तक में समाविष्ट किया गया । सभी आवश्यक लक्षणों में, इसने अपने पुरोगामी अर्थात् प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम, 1985 की नकल की है । उच्चतम न्यायालय ने पृथ्वी पाल सिंह बनाम भारत संघ[39] वाले मामले में सशस्त्र बलों के लिए स्वतंत्र अपीली मंच की आवश्यकता पर बल दिया था । भारत के विधि आयोग ने "सेना, नौ-सेना और वायु सेना बल अधिनियम का संशोधन" (1999) पर अपनी 169वीं रिपोर्ट में भी सशस्त्र बल अपीली अधिकरण की स्थापना की सिफारिश की थी ।

6.2 सशस्त्र बल अधिकरण विधेयक, 2005 का संसद् में पुरःस्थापन सेना अधिनियम, 1950, नौसेना अधिनियम, 1957 और वायुसेना अधिनियम, 1950 के अध्यधीन व्यक्तियों के बारे में कमीशन, नियुक्तयों, अभ्यावेशनों और सेवा की शर्तों की बाबत विवादों और शिकायतों का सशस्त्र बल अधिकरण द्वारा न्यायनिर्णयन या विचारण के लिए उपबंध करने तथा उक्त अधिनियमों के अधीन आयोजित सेना न्यायालय के आदेशों, निष्कर्षों या दण्डादेशों से उत्पन्न अपीलों का तथा उनसे संबंधित या उनके आनुषंगिक विषयों का उपबंध करने के लिए है ।

6.3 सशस्त्र बल अधिकरण अधिनियम, 2007 का अध्याय 5 उच्चतम न्यायालय को अपील के बारे में है । धारा 30 की उपधारा (1) में यह उपबंध है कि अधिकरण के अंतिम विनिश्चय या आदेश (धारा 19 के अधीन पारित आदेश से भिन्न) के विरुद्ध अपील 90 दिनों की अवधि के भीतर

---

[39] ए. आई. आर. 1982 एस. सी. 1413

उच्चतम न्यायालय में होगी । यह धारा 30(1), धारा 31 के उपबंधों के अध्यधीन है । इसमें यह भी उपबंध है कि अधिकरण के अंतवर्ती आदेश के विरुद्ध कोई अपील नहीं होगी और यह कि धारा 30 की उपधारा (2) के उपबंध के अनुसार अधिकरण के अवमान के लिए दण्ड देने की अपनी अधिकारिता के प्रयोग में दिए गए किसी आदेश या विनिश्चय के विरुद्ध अपील उच्चतम न्यायालय में अधिकार के रूप में होगी जो उस आदेश की तारीख से, जिसके विरुद्ध अपील की गई है, 60 दिनों के भीतर फइल की जाएगी । धारा 31 में स्पष्टतः यह उल्लेख है कि उच्चतम न्यायालय को अपील अधिकरण की इजाजत से होगी और ऐसी इजाजत तब तक नहीं दी जाएगी जब तक अधिकरण द्वारा यह प्रमाणित नहीं कर दिया जाता है कि विनिश्चय में जन साधारण के महत्व का विधि का कोई प्रश्न अंतर्वलित है या उच्चतम न्यायालय को ऐसा प्रतीत होता है कि बिन्दु ऐसा है जिस पर उस न्यायालय द्वारा विचार किया जाना चाहिए । धारा 33 इस अधिनियम के अधीन सेवा संबंधी मामले के संबंध में सिविल न्यायालयों की अधिकारिता का अपवर्जन करती है ।

6.4 2007 अधिनियम की धारा 6(1) में यह उपबंध है कि कोई व्यक्ति अध्यक्ष के रूप में नियुक्ति के लिए तभी अर्हित होगा जब उच्चतम न्यायालय का सेवानिवृत्त न्यायाधीश या उच्च नयायालय का सेवानिवृत्त मुख्य न्यायमूर्ति हो और धारा 6(2) के अनुसार कोई व्यक्ति न्यायिक सदस्य के रूप में नियुक्ति के लिए तभी अर्हित होगा जब वह किसी उच्च न्यायालय का न्यायाधीश है या रहा है । धारा 6(3) के अनुसार प्रशासनिक सदस्य सेना में से लिया जाएगा जिसने तीन वर्ष की कुल अवधि के लिए मेजर जनरल की या उससे ऊपर की रैंक का हो और जज एडवोकेट जनरल की दशा कम से कम एक वर्ष का हो ।

6.5 धारा 7 में यह उपबंध है कि अध्यक्ष और सदस्यों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा भारत के मुख्य न्यायमूर्ति के परामर्श से की जाएगी ।

6.6 सिविल न्यायालयों की अधिकारिता के अपवर्जन पर धारा 33 इस प्रकार है :–

> " ऐसी तारीख से जिससे इस अधिनियम के अधीन सेवा संबंधी मामलों के संबध में कोई अधिकारिता, शक्तियां और प्राधिकार अधिकरण द्वारा प्रयोक्तव्य हो जाते हैं, किसी सिविल न्यायालय को उन सेवा संबंधी मामलों के संबंध में ऐसी अधिकारिता, शक्ति या प्राधिकार नहीं होगा या वह उसका प्रयोग करने का हकदार नहीं होगा ।"

6.7 यहां यह उल्लेखनीय है कि संविधान के अनुच्छेद 136(2) के अनुसार उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील की विशेष इजाजत विषयक अनुच्छेद 136(1) के उपबंध सशस्त्र बल विषयक किसी विधि द्वारा या इसके अधीन गठित किसी न्यायालय या अधिकरण द्वारा पारित या किया गया कोई निर्णय, अवधारण, दण्डादेश या आदेश को लागू नहीं होते हैं । इसी प्रकार, संविधान का अनुच्छेद 227(4) में यह उपबंध है कि अनुच्छेद 227 की कोई बात सशस्त्र बल विषयक किसी विधि द्वारा या इसके अधीन गठित किसी न्यायालय या अधिकरण पर अधीक्षण की शक्तियां उच्च न्यायालय को प्रदत्त किया गया नहीं समझा जाएगा ।

6.8 हम सशस्त्र बल अधिकरण विधेयक, 2005 के उद्देश्यों और कारणों के कथन का भी उल्लेख करते हैं, जो इस प्रकार हैं :–

" उद्देश्यों और कारणो का कथन

सेना और वायु सेना की विद्यमान न्याय प्रशासन प्रणाली में सेवा संबंधी विषयों की शिकायतों के विरुद्ध कानूनी परिवादों और सेना न्यायालय के निष्कर्षों और दण्डादेशों के विरुद्ध पुष्टि पूर्व और पश्चात् अर्जी विभिन्न प्राधिकारियों को प्रस्तुत करने की व्यवस्था है । नौ-सेना में व्यथित व्यक्ति को सेवा संबंधी मामलों का परिवाद प्रस्तुत करने का अधिकार है और सेना-न्यायालय के निर्णय और दण्डादेश की बाबत नौ-सेना में जज एडवोकेट जनरल के समक्ष् सुनवाई के पूर्व अंततः नौसेनाध्यक्ष के समक्ष प्रस्तुत करने का अधिकार है ।

2. इस तथ्य को ध्यान मे रखते हुए कि उपरोक्त वर्णित संघ के तीन सशस्त्र बलों के सदस्यों के सेवा संबंधी मामले विषयक बहुत मामले काफी समय से न्यायालयों में लंबित हैं, इसलिए रक्षा कार्मिकों के लिए स्वतंत्र न्याय निर्णायक फोरम के गठन पर पिछले कुछ समय से केन्द्रीय सरकार का ध्यान जा रहा है । 1982 में पृथ्वी पाल सिंह बनाम भारत संघ और अन्य (ए. आई. आर. 1982 एस. सी. 1413) वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि सशस्त्र बलों से संबंधित विधियों में साक्ष्य, विधिक रचना, दंड का निष्कर्ष और पर्याप्तता अभाव दुःखद और सुस्पष्ट खामी है और सरकार से सेवा संबंधी मामलों में कम से कम एक न्यायिक पुनिर्वलोकन का उपबंध करने हेतु कदम उठाने का आग्रह किया । 20 अगस्त, 1992 को लोक सभा में प्रस्तुत संसद् का प्राक्कलन समिति ने अपनी 19वीं रिपोर्ट में यह इच्छा व्यक्त की कि सरकार को सेवा कार्मिकों के लिए एक स्वतंत्र कानूनी बोर्ड या अधिकरण गठित करना चाहिए ।

3. उपरोक्त को ध्यान मे रखते हुए, संघ के उक्त सशस्त्र बलों के सदस्यों को शीघ्र और कम खर्चीला न्याय उपलब्ध कराने के लिए तीनों सेनाओं (सेना, नौसेना और वायु सेना) के सदस्यों की सेना न्यायालयों के निर्णयों से उद्भूत अपीलों और सेवा संबंधी मामलों के परिवादों और विवादों के न्यायनिर्णयन के लिए एक सशस्त्र बल अधिकरण गठित कर एक नया विधान अधिनियमित करने का प्रस्ताव है ।

4. एक स्वतंत्र सशस्त्र बल अधिकरण की स्थापना से तीनों सेवाओं के सदस्यों में अपने सेवा संबंधी मामलों के संबंध में न्याय व्यवस्था में आस्था और विश्वास मजबूत होगा ।

5. विधेयक सेना न्यायालयों के निर्णयों के विरुद्ध विधि और तथ्यों के बिंदु पर न्यायिक अपील का उबपंध करने के लिए है जो आज की परम आवश्यकता है और इसकी कमी पर उच्चतम न्यायालय ने कई बार प्रतिकूल टिप्पणी की है । अधिकरण उच्चतम न्यायालय के सिवाय सभी न्यायालयों की अधिकारिता को हटा देगा जिसके द्वारा विभिन्न न्यायालयों के समक्ष लंबित अनेक मामलों में कमी और मामलों के शीघ निपटान के अलावा मानव शक्ति, सामग्री और समय के रूप मे सशस्त्र बलों का संसाधन भी संरक्षित होगा । अंततः इसके परिणामस्वरूप संघ के पूर्वोक्त तीनों सशस्त्र बलों के सदस्यों को शीघ्र और कम खर्चीला न्याय प्राप्त होगा ।

6. खंडों के टिप्पण विधेयक के विभिन्न उपबंधों को विस्तार से स्पष्ट करते हैं ।

7. विधेयक उपरोक्त उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए है ।

प्रणव मुखर्जी

नई दिल्ली

15 दिसम्बर, 2005"

6.9 उद्देश्यों और कारणों के कथन का सावधानीपूर्वक परिशीलन करने से स्पष्टतः यह प्रकट होता है कि सशस्त्र बल अधिकरण की स्थापना संघ के उक्त सशस्त्र बलों के सदस्यों को शीघ्र और कम खर्चीला न्याय उपलब्ध कराने के लिए की गई है और यह कि स्वतंत्र सशस्त्र बल अधिकरण की स्थापना से तीनों सेवाओं के सदस्यों में अपनी सेवा संबंधी मामलों की न्याय प्रणाली में आस्था और विश्वास मजबूत होगा । उल्लेखनीय एक अन्य महत्वपूर्ण लक्षण यह है कि अधिनियम सेना न्यायालयों के निर्णयों के विरुद्ध सामान्य लोक महत्व के विधि-बिन्दुओं पर अपील करने का उपबंध करता है जो आज की परम आवश्यकता है और इसकी कमी पर उच्चतम न्यायालय ने कई बार प्रतिकूल टिप्पणी की है । यह भी विनिर्दिष्ट रूप से उपबंधित है कि अधिकरण उच्चतम न्यायालय के सिवाय सभी न्यायालयों की अधिकारिता हटा देगा जिसके द्वारा मामलों के **शीघ्र निपटान** के अलावा सशस्त्र बलों का मानव शक्ति, सामग्री और समय के रूप में संसाधन भी संक्षिप्त होगा और विभिन्न न्यायालयों के समक्ष लंबित मामलों की संख्या में कमी आएगी और अंततः इसका यह परिणाम होगा कि संघ के तीनों सशस्त्र बलों के सदस्यों को शीघ्र और कम खर्चीला न्याय मिलेगा ।

6.10 यह उल्लेखनीय है कि सशस्त्र बल अधिकरण अधिनियम, 2007 के अधीन गठित अधिकरण द्वारा दिए गए । अभिलिखित विनिश्चयों की चुनौती केवल उच्चतम न्यायालय में विशेष इजाजत याचिका के माध्यम से

की जा सकती है । जब सशस्त्र बलों से संबंधित सेवा संबंधी मामलों में अन्तिमता का सुझाव दिया जाना संभव है तो प्रशासनिक अधिकरण के साथ भिन्न बर्ताव किए जाने की आवश्यकता नहीं है जब यह सिविल सेवकों के विवाद्यकों पर विचार करता है । सशस्त्र बल अधिकरण के साथ-साथ केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण को शामिल कर संविधान के अनुच्छेद 227(4)में उपयुक्त संशोधन करना संभव होगा । जब तक यह सुनिश्चित किया जाए कि उच्चतम न्यायालय काल्पनिक या ऐतिहासिक कारणों से आंतः-अधिकरण अपील के माध्यम से मूल और अपीली अधिकारिता में प्रशासनिक अधिकरण द्वारा पारित अनुदेशों की बाबत अपीली अधिकारिता का उपभोग करता रहता है, उच्च न्यायालय की निर्णय सूची को प्रशासनिक अधिकरणों से रिट याचिकाओं के बांध द्वारा विस्फोटित किए जाने की आवश्यकता नहीं है ।

7. प्रशासनिक अधिकरण – अनिवार्यता

7.1 जिस कारण से प्रशासनिक अधिकरणों का गठन किया गया था, अब भी विद्यमान है ; वस्तुतः वे कारण हमारे समय में और अधिक प्रखर हो गए हैं । हमने पहले ही उपदर्शित कर दिया है कि हमारी संवैधानिक स्कीम ऐसे अधिकरणों के गठन की अनुज्ञा देता है ।[40]

7.2 उच्च न्यायालयों के समक्ष लंबित मुकदमों की बढ़ती बाढ़ की घोर चिन्ता के संबंध में, "आनुकल्पिक संस्थागत तंत्र" का सिद्धांत भी प्रशासनिक अधिकरणों की स्थापना की प्रतिरक्षा के लिए प्रतिपादित किया गया । इन प्रशासनिक अधिकरणों से उच्च न्यायालयों के व्यवहार्य प्रतिस्थानी के रूप में कार्य करने की प्रत्याशा है ।

7.3 1.11.1985 से 28.2.2006 तक की अवधि के, कार्मिक, लोक शिकायत और पेंशन मंत्रालय द्वारा संसदीय स्थायी समिति[41] को प्रस्तुत आंकड़े के अनुसार केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण में कुल 470365 मामले संस्थित किए गए थे, इनमें से 446369 मामले निपटाए गए और 23996 मामले लंबित थे । मामलों के निपटान के अत्युत्तम दर को ध्यान मे रखते हुए समिति ने प्रशासनिक अधिकरणों को समाप्त करने के पक्ष में कोई तर्कसंगत कारण नही पाया । समिति ने यह उल्लेख किया कि अधीनस्थ न्यायालयों और उच्च न्यायालयों की तुलना में प्रशासनिक अधिकरणों का मामलों के निपटान का रिकार्ड बेहतर रहा है । प्रशासनिक अधिकरणों के समापन उच्च न्यायालयों में लबित मामलों संख्या बढ़ाएगा जिसके द्वारा

---

[40] पूर्वोक्त टिप्पण 8, पैराग्राफ 91

[41] पूर्वोक्त टिप्पण 2, पैराग्राफ 11.17

उच्च न्यायालयों पर अतिरिक्त भार डालने से नागरिकों को शीघ्र न्याय नहीं मिल पाएगा । विस्तृत चर्चा के पश्चात् समिति ने सर्वसम्मति से यह व्यक्त किया :-

> " ..... यदि अपील का उबपंध किया जाना है तो यह केवल उच्चतम न्यायालय में किए जाने का उपबंध किया जाए ।"[42]

7.4 आगे, समिति ने चिन्ता व्यक्त करते हए यह उल्लेख किया कि उच्च न्यायालय पहले ही लंबित मामलों की भारी संख्या से अधिक भार से बोझिल है.....वहां उच्च न्यायालयों के समक्ष लगभग 34 लाख मामले लंबित है ।[43]

7.5 माननीय न्यायमूर्ति वी. एस. मलिमथ ने समिति के समक्ष बल देकर यह कहा :-

> " ..... संसद् ने दो आधारों पर सेवा संबंधी मामलों जैसे विशिष्ट मामलों की सुनवाई करने के प्रयोजन से विशेष अधिकरणों की व्यवस्था करने के लिए अनुच्छेद 323क अधिनियमित किया । पहला, यह है कि उच्च न्यायालय अन्य प्रकार के कार्यों से इतना अधिक बोझिल है इसलिए उसके द्वारा सेवा संबंधी मामलों का शीघ्रता से निपटान करना संभव नहीं है । दूसरा यह है कि सेवा संबंधी मामलों के लिए एक प्रकार की विशेषज्ञता की आवश्यकता होती है इसलिए सेवा संबंधी मामलों के अनुभव का तत्व आवश्यक है । अतः, उच्च न्यायालय समेत देश के सभी न्यायालयों की अधिकारिता को अपवर्जित करके विशेष अधिकरण गठित किए गए । यदि ये मामले

---

[42] वही, पैराग्राफ 13.5
[43] वही, पैराग्राफ 13.8

काफी समय तक लंबित रहते हैं तो सरकारी सेवक, जिनसे प्रशासन में सहायता करने की प्रत्याशा है, न्यायालयों के समक्ष प्रतीक्षा करने में लग जाएंगे और उनकी सेवा प्रभावित होगी । इस मनःस्थिति में, क्या वे सरकारी कार्य करने में समर्थ होंगे? इसलिए, प्रशासन की दृष्टि से शीघ्र निपटान आवश्यक है और यही आशय है और यही बहस की गई जब अनुच्छेद 323क का अधिनियमन किया गया। " [44]

7.6 समिति ने इस तथ्य पर ध्यान दिया कि माननीय उच्चतम न्यायालय ने इसे बिल्कुल स्पष्ट कर दिया है कि अधिकरण विधि के उन क्षेत्रों, जिनके लिए उनका गठन किया गया है, की बाबत प्रथम स्तर न्यायालय के रूप में ही कार्य करते रहेंगे और वादकारी ऐसे मामलों में भी जहां वे कानूनी विधानों की शक्तिमत्ता को प्रश्नगत करते हैं, सीधे उच्च न्यायालयों में आवेदन करने के लिए स्वतंत्र नहीं होंगे । समिति की यह विचारित राय थी कि चूंकि सर्वोच्च न्यायालय ने ऐसे स्पष्ट शब्दों में प्रशासनिक अधिकरणों की आवश्यकता को कायम रखा है इसलिए, इस तथ्य के संबंध में किंचितमात्र भी संदेह नहीं है कि प्रशासनिक अधिकरण सरकारी कर्मचारियों की शिकायतों के शीघ्र प्रतितोष के लिए आत्यंतिकतः अनिवार्य है ।

7.7 माननीय न्यायमूर्ति के. जी. बालकृष्णन, भारत के मुख्य न्यायमूर्ति ने यह मत व्यक्त किया है कि एल. चन्द्र कुमार वाले मामले के विनिश्चय के आलोक में उच्च न्यायालयों द्वारा उनके विनिश्चयों की संवीक्षा करने की शक्ति के बावजूद, प्रशासनिक अधिकरणों को जारी रखना वांछनीय है ।[45]

---

[44] वही पैराग्राफ 13.13

[45] 2 अगस्त, 2008 विज्ञान भवन, नई दिल्ली में हुए " केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण का अखिल भारतीय सम्मेल" के उद्घाटन सत्र का प्रमुख संबोधन ।

7.8 उच्च न्यायालय राज्य न्यायिक तंत्र के सर्वोच्च पर है । जब तक आधार स्तर जहां वाद आरंभ होता है और अपील या पुनरीक्षण के माध्यम से उच्च न्यायालय की ओर सीधे बढ़ता है, को पुनःसंरचित किया जाए और इस प्रचुरोद्भवन अपीली अधिकारिता को या तो नियंत्रित किया जाए या कम किया जाए तब तक उच्च न्यायालय में कार्य का बहाव न तो नियमित होगा और न ही कम होगा । विधि आयोग ने यह मत व्यक्त किया कि जहां तक संभव हो, न्याय की गुणता को नष्ट किए बिना प्रोद्भवन अपीली और व्यापक मूल अधिकारिता को नियंत्रित या कम किया जाए । आयोग का दृष्टिकोण विशेष न्यायालयों/अधिकरणों की स्थापना कर और साथ ही साथ उच्च न्यायालय की अधिकारिता को समाप्त कर अपीलों की संख्या कम करना है ।[46]

7.9 विलम्ब के मुद्दे पर जो सेवा विवादों के निपटान के मामले में प्रणाली को प्रभावित करता है, साधारणतः यह उल्लेख किया जाता है कि प्रशासनिक अधिकरण के समक्ष आवेदनों का निपटान हमेशा शीघ्रता से किया जाना चाहिए और अधिकांश न्यायपीठों में पुराने मामले लंबित नहीं हैं । लेकिन क्योंकि प्रशासनिक अधिकरण के आदेशों की उच्च न्यायालयों के समक्ष चुनौती दी जा सकती है और इसके पश्चात् कुछ मामले उच्चतम न्यायालय तक जाते हैं इसलिए अंतिम उपचार बाढ़ वाले प्रक्रमों पर ही मिलता है और प्रकार प्रभावी रूप से प्रशासनिक अधिकरणों के गठन का प्रयोजन ही विफल हो जाता है।

7.10 जब सशस्त्र बल अधिकरण अधिनियम, 2007 एक वास्तविकता है तो सम्मेलन[47] में भाग लेने वाले सदस्यों की यह राय थी कि प्रशासनिक

---

[46] पूर्वोक्त पृष्ठ 17-18
[47] पूर्वोक्त टिप्पण 45

अधिकरण अधिनियम का उपयुक्त संशोधन संसद् के नवीनतम अधिनियम के निर्धारणानुसार किया जा सकता है । इस प्रकार प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम का संशोधन और संविधान का संशोधन बेहतरी के लिए आश्चर्यजनक परिवर्तन लाएगा ।

7.11 विधि आयोग का यह मत है कि प्रशासनिक अधिकरण बहुत महत्वूपर्ण है और वस्तुतः लोकतांत्रिक राज्य की न्याय निर्णायक प्रणाली के आवश्यक भाग हैं । अधिकरण अब ठहर से गए हैं । अधिकरणों को समाप्त करने के बजाय विशेष अधिकरणों के विकास की संभावना है ।

7.12 अध्यक्ष, सदस्य-न्यायिक/प्रशासनिक विशेषकर प्रशासनिक की वर्धित न्यूनतम अपेक्षित अर्हताओं को ध्यान मे रखते हुए और अध्यक्ष को उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति और न्यायिक/प्रशासनिक सदस्यों को न्यायाधीशों की हैसियत देकर न्यायपालिका और प्रशासन के सर्वोत्तम उपलब्ध व्यक्तियों को आकर्षित किया जा रहा है और यथापूर्वोक्त संबद्ध पदों पर आसीन करने के लिए चयनित किया जा रहा है । इस प्रकार अधिकरण को अब न्यायपालिका और प्रशासन के व्यापक अनुभव वाले व्यक्तियों से सुसज्जित किया जाए जिससे न केवल मामलों का शीघ्र निपटान होगा बल्कि निर्णयों में गुणता भी आएगी । आरंभ में जब 1985 का अधिनियम अस्तित्व में आया और अधिकरण द्वारा मामलों का निपटान किया जाने लगा तो यह विचार व्यक्त किया जा रहा था कि अधिकरण के सदस्यों के पास जटिल विधि और तथ्य के प्रश्नों पर विचार करने के लिए विधिक दक्षता नहीं है । समय के साथ-साथ स्थिति में काफी सुधार हुआ है और अधिकरण द्वारा दिए गए शीघ्र और गुणत्मक न्याय की सभी लोगों ने प्रशंसा की है ।

8. निष्कर्ष और सिफारिशें

8.1 यह राय कि 1985 के अधिनियम के अधीन गठित अधिकरण सरकार पर आश्रित हो सकता है, भ्रामक है । अधिकरण के कार्यकरण पर सरकार का किसी भी रीति से किसी प्रकार का नियंत्रण नहीं है । अध्यक्ष, उपाध्यक्ष और सदस्य-न्यायिक/प्रशासनिक अपने कर्तव्यों का निर्वहन उसी प्रकार कर रहे हैं जैसे देश के उच्चतम न्यायपालिका द्वारा किया जा रहा है । तथापि, इस आशंका को कम करने के लिए कि अधिकरण का नियंत्रण कतिपय विषयों पर सरकार का हो सकता है, अधिकरण के अध्यक्ष को उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति के बराबर शक्तियां दी जा सकती हैं । उस संबंध में अधिकरण के कर्मचारियों की सेवा शर्तें अधिकथित करने के बारे में संविधान के अनुच्छेद 239 के समान 1985 के अधिनियम के एक उपबंध में अध्यक्ष को निहित की जा सकती हैं । उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा यथा उपयोजित वित्तीय मामलों में अधिक स्वतंत्रता अधिकरण के अध्यक्ष को दी जा सकती है । अधिकरण का नोडल मंत्रालय कार्मिक, लोक शिकायत और पेंशन मंत्रालय के बजाय विधि और न्याय मंत्रालय हो सकता है ।

8.2 हम महसूस करते हैं कि यदि यह राय हो कि मामला उच्चतम न्यायालय पहुंचने के पूर्व अधिकरण द्वारा पारित आदेशों के विरुद्ध कम से कम एक अपील की व्यवस्था की जानी चाहिए तो प्रत्येक उच्च न्यायालय में लेटर्स पेटेंट अपील या रिट अपील के माध्यम से अपील के समान आंतःअधिकरण अपील का उपबंध स्वयं 1985 के अधिनियम के अधीन किया जा सकता है । इस प्रकार 1985 के अधिनियम में उपयुक्त संशोधन

के माध्यम से आंतःअधिकरण अपील का उपबंध किया जा सकता है जिससे कि एकल सदस्य न्यायपीठ द्वारा पारित आदेश की अपील खंड न्यायपीठ के समक्ष हो सके और खंड न्यायपीठ के विनिश्चय की चुनौती या तीन या तीन से अधिक सदस्यों से मिलकर बनी न्यायपीठ के समक्ष की जा सके । देश के चार जोन अर्थात् उत्तर, पूर्व, पश्चिम और दक्षिण बनाए जा सकते हैं जहां विभिन्न न्यायपीठों में अपीलें फाइल की जा सकें । इसके लिए अधिक से अधिक अधिकरण में आठ से दस सदस्यों के पद का सृजन अंतर्वलित हो सकता है । अपीली न्यायपीठ द्वारा अभिलिखित विनिश्चय के पश्चात् विशेष इजाजत याचिका द्वारा मामला उच्चतम न्यायालय में लाया जा सकता है ।

8.3 आसीन या सेवानिवृत्त न्यायाधीश 1985 के अधिनियम की धारा 6 के उपबंध के आधार पर अध्यक्ष नियुक्त किए जाने का पात्र है । तथापि, परंपरा और व्यवहार द्वारा अधिकरण के सौंपे गए कार्य के महत्व पर विचार करते हुए उच्च न्यायालय के आसीन या सेवानिवृत्त मुख्य न्यायमूर्ति की नियुक्त अध्यक्ष के रूप में की जाती है । 1985 से नियुक्त पहले 7 अध्यक्ष सभी उच्च न्यायालयों के आसीन चार भूतपूर्व न्यायमूर्ति थे । केवल संक्षिप्त अवधि के लिए इसके पश्चात् दो अध्यक्ष उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायमूर्ति नहीं थे । इस समय अध्यक्ष भूतपूर्व मुख्य न्यायमूर्ति हैं । तथापि, यह ज्ञातव्य है कि प्रशासनिक पक्ष की ओर से भारत के माननीय मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा एक आदेश पारित किया गया है कि अधिकरण के अध्यक्ष का पद हमेशा उच्च न्यायालय के आसीन या भूतपूर्व मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा भरा जाएगा । अध्यक्ष के रूप में नियुक्ति के लिए अर्ह होने हेतु उच्च न्यायालय के आसीन या भूतपूर्व मुख्य न्यायमूर्ति या उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश को बनाने के लिए 1985 के अधिनियम की धारा 6 में उपयुक्त

संशोधन किया जा सकता है ।

8.4 संसदीय स्थायी समिति ने यह मत व्यक्त किया :-

> " .....हो सकता है, उच्चतम न्यायालय का सेवानिवृत्त न्यायाधीश अध्यक्षता करे । और, हो सकता है, अन्य सदस्य न्यायपालिका से हों ; जिला न्यायाधीशों से नहीं, बल्कि उच्च न्यायालय के स्तर से, हम किसी व्यक्ति को रख सकते हैं । और, तब, तीसरा और चौथा सदस्य प्रशासन से हो सकता है जिससे कि अधिकरण की गरिमा और संख्या को उस हद तक बढ़ाया जा सके । "

8.5 विधि आयोग की यह राय है कि पूर्व अध्यायों में कथित परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए निश्चित रूप से विषय पर भारत सरकार और राज्य सरकारों को ध्यान देने की अपेक्षा है और यह कि अधिनियम के उद्देश्य अर्थात् शीघ्र और कम खर्चीला न्याय प्राप्त करने के लिए केन्द्रीय और राज्य दोनों के सरकारी सेवकों के हित में एल. चन्द्र कुमार वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय के निर्णय पर उच्चतम न्यायालय की बृहत्तर न्यायपीठ द्वारा पुनर्विचार किए जाने की अपेक्षा है । यदि इस प्रस्ताव को उचित परिप्रेक्ष्य में लिया जाए तो यह न केवल काउंसेल को फीस आदि के द्वारा भारी व्यय को कम करेगा बल्कि इससे समय भी कम लगेगा ।

8.6 अतः, विधि आयोग भारत सरकार को एल. चन्द्र कुमार वाले मामले पर पुनः विचार करने के लिए माननीय उच्चतम न्यायालय से अनुरोध करने की सिफारिश करता है । अनुकल्पतः, प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम, 1985 में आवश्यक और समुचित संशोधन विधि के अनुसार लाया जाए ।

ह/-

(डा. न्यायमूर्ति एआर. लक्ष्मणन)

अध्यक्ष

ह/-

(प्रोफेसर (डा.) ताहिर महमूद

सदस्य

ह/-

(डा. ब्रह्म ए. अग्रवाल)

सदस्य-सचिव